# निमित्त उपादान में शास्त्र के अर्थ करने की विधि

## श्री पंचास्तिकाय सूत्र ६२

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं ।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥६२॥

सूत्रार्थ—द्रव्य कर्म भी अपने स्वभाव से अपने को करता है और वैसा जीव भी कर्म स्वभाव भाव से (औदयिक आदि भाव से) बराबर अपने को करता है ।

टीका– निश्चय नय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के (अपने अपने रूप के) कर्त्ता हैं ऐसा यहा कहा है । १) पुद्गल स्वतन्त्र रूप से द्रव्यकर्म को करता होने से पुद्गल स्वयमेव कर्त्ता है (२) स्वयं द्रव्यकर्मरूप परिणमने की शक्तिवाला होने से पुद्गल स्वयंमेव करण है (३) द्रव्य कर्म को प्राप्त करता–पहुँचता होने से द्रव्य-कर्म स्वयं कर्म है अथवा द्रव्यकर्म से स्वयं अभिन्न होने से पुद्गल स्वयं ही कर्म (कार्य) है (४) अपने में से पूर्व परिणाम को व्यय करके द्रव्य-कर्म रूप परिणाम करता होने से और पुद्गल द्रव्य रूप से ध्रुव रहता हुआ होने से पुद्गल स्वयमेव अपादान है (५) अपने को द्रव्यकर्म रूप परिणाम देता होने से पुद्गल स्वयमेव सम्प्रदान है (६) अपने मे अर्थात् अपने आधार से द्रव्यकर्म करता हुआ होने से पुद्गल स्वयमेव अधिकरण है । उसी प्रकार (१) जीव स्वतन्त्र रूप से जीव भाव को करता होने से जीव स्वयं ही कर्ता है (२) स्वयं जीवभाव रूप से परिणमने की शक्ति-वाला होने से जीव स्वयं ही करण है (३) जीव भाव को प्राप्त करता–पहुँचता होने से जीवभाव कर्म है. अथवा जीवभाव से स्वय अभिन्न होने से जीव स्वयं ही कर्म.है (४) अपने में से पूर्व भाव को व्यय करके (नवीन) जीवभाव करता होने से और जीव द्रव्यरूप से ध्रुव रहता होने से जीव स्वयं ही अपादान है (५) अपने को जीव भाव देता होने से जीव स्वयं ही सम्प्रदान है (६) अपने में अर्थात् अपने आधार से जीवभाव करता होने से जीव स्वय अधिकरण है । इस प्रकार पुद्गल की कर्मो-दयादि रूप से कि कर्मबन्धादि रूप से परिणमने की क्रिया के विषय में वास्तव में पुद्गल ही स्वयमेव ही छः कारकरूप से वर्तता होने से उनको दूसरे कारक की अपेक्षा नहीं है तथा जीव की औदयिकादि भाव रूप से परिणमने की क्रिया के सम्बन्ध में वास्तव मे जीव ही स्वयमेव ही छः कारकरूप वर्तता होने से उसको अन्य कारक की अपेक्षा नही है । पुद्गल की और जीव की उपर्युक्त क्रियाये एक ही समय में वर्तती होने

पर भी पौद्गलिक क्रिया के विषय में वर्तता पुद्गल के छः कारक जीव-कारकों से तदन भिन्न और निरपेक्ष है तथा जीव भाव रूप क्रिया के विषय मे वर्तते जीव के छः कारक पुद्गल कारकों से तदन भिन्न और निरपेक्ष है। वास्तव में कोई द्रव्य के कारकों को कोई अन्य द्रव्य के कारकों की अपेक्षा होती नही है। इसलिये निश्चय से कर्मरूप कर्त्ता को जीव कर्ता नहीं है और जीवरूप कर्ता को कर्म कर्ता नहीं है (जहा कर्म कर्ता है वहां जीव कर्ता नही है और जहां जीव कर्ता है वहां कर्म कर्ता नहीं है)।

भावार्थ—कर्म उदय पहले है जीव का राग भाव पीछे है या राग भाव पहले है कर्मोदय पीछे है या कर्मोदय राग कराता है, ये सब मान्यताये मिथ्या है। कर्मोदय और जीव के राग भाव का एक समय है दोनों का परिणमन एक दूसरे के कारण से नहीं है किन्तु स्वतन्त्र एक दूसरे से निरपेक्ष अपने २ कारण से है। दोनों मे से एक न हो यह नहीं है या एक का परिणमन दूसरे के कारण से हो यह भी नहीं है। दोनो अपने कारण से है और अपने २ स्वकाल की योग्यता से पर से निरपेक्ष स्वतन्त्र परिणमन करते है। ज्ञानावरणीय के नाश से केवलज्ञान होता है यह भी नहीं है। केवलज्ञान होना है इसलिये ज्ञानावरणीय नाश होता है यह भी नही है। दोनों का एक समय है और दोनों एक दूसरे से निरपेक्ष अपने २ स्वकाल की योग्यता से छः कारक रूप परिणमते हैं। ज्ञानावरणीय का क्षय अपने कारण से होता है और केवलज्ञान की उत्पत्ति अपने कारण से होती है। इसी प्रकार न कर्म के उदय से राग होता है और न राग के कारण कर्म बनते है। ये तो निमित्त के कथन हैं। वास्तव मे कर्मोदय अपने कारण से स्वयं है। जीव का राग अपने कारण से स्वयं है। उसी प्रकार जीव राग अपने कारण से स्वयं करता है और कर्म अपने कारण से स्वयं बनते हैं। कोई एक दूसरे के करता नहीं हैं। निरपेक्ष छः कारक रूप परिणमते हैं। ऐसा भाव उपर्युक्त मूलगाथा और टीका-अर्थ-भावार्थ द्वारा मुमुक्षु को बराबर निर्णय करना चाहिये। यह मूल गाथा विभाव की है। इस गाथा का पक्का अभ्यास होने से उपादान निमित्त की सब भ्रमणा जडमूल से नाश हो जाती है। विद्वानों से हमारा आग्रहपूर्वक निवेदन है कि वे मूलसंस्कृत टीका पर अवश्य विचार करें और इस आगम प्रमाण के आधार पर ही सब निमित्त उपादान का अर्थ होना चाहिये।

———

# शुद्धि-पत्र

# श्री द्रव्यसंग्रह परमागम

में निम्नलिखित अशुद्धियां रह गई हैं, कृपया अवश्य ठीक करलें—

| पृष्ठ | लाईन | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १ | ३ | प्रकाशनी | प्रकाशिनी |
| ११ | ५ | निर्वृ त्ति | निवृत्ति |
| १६ | ५-६ | अनादि अनन्त सत् अहेतुक | कर्म रहित |
| २१ | २४ | जो कारण शुद्ध पर्याय है | × |
| २३ | ५ | हैं। | हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। अवधि और मनःपर्यय विकल प्रत्यक्ष है। शेष परोक्ष हैं) |
| २७ | २४ | शुद्धदर्शन | शुद्धदर्शनमयी आत्मा |
| २८ | ८ | सम्यदृष्टि | सम्यग्दृष्टि |
| ३० | १० | (अज्ञान दशा तक) | × |
| ३० | १२ | (अज्ञान दशा तक) | × |
| ३१ | ३-४ | अज्ञानी में वह स्वपर्याय अज्ञानरूप है और ज्ञानी में ज्ञान रूप है। | × |

पृष्ठ ३३ से ४२ तक के पन्ने कैंसल करके नये पुनः छाप कर बदले हैं।

| पृष्ठ | लाईन | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ४७ | १९ | अर्थात् | अर्थ |
| ४८ | ७ | अन्तस्तत्त्व | अन्तस्तत्त्व, कारण शुद्धपर्याय |
| ४९ | १९ | यही है | यही है। कारण शुद्ध पर्याय भी यही है। |

| पृष्ठ | लाईन | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ५१ | ६ | क्षायिक पर्याय व्यवहार से कही गई है | क्षायिक पर्याय व्यवहार से कही गई है। इसका भाव यह है कि क्षायिक पर्याय भी है तो निश्चय रूप से पर कर्माभाव अपेक्षा सापेक्ष है। सापेक्ष अपेक्षा व्यवहार है किन्तु सद्भाव उसका भी नित्य निरन्तर निश्चय रूप से है। |
| ५१ | १८ | सिद्धत्व अधिकार शुद्ध जीवास्तिकाय नामा द्रव्य है। | सिद्धत्व अधिकार शुद्ध द्रव्य गुण पर्यायमय पूर्ण वस्तु है। |
| ५३ | ६ | पर अनादि कर्म संयोग | पर अनादि से अपने अशुद्ध उपादान |
| ५३ | ७ | निमित्त से | निमित्त में जुड़ने से |
| ५३ | १६ | संयोग के | संयोग के आश्रय करने के कारण |

५५-५६ के दोनों पन्ने कैंसल करके नये बदले हैं।

५७ १-२ दोनों लाईन निकाल दें।

नोट—शास्त्र समुद्र में कौन गोते नहीं खाता। हम से श्री द्रव्यसंग्रह में महान् भूलें हुई हैं। पन्ना ३३ से ४२ तक तथा पन्ना ५५-५६ तो सारा ही गलत हो गया है। अतः नये छपाये हैं। कृपया अपनी पुस्तक में स्वयं बदल लें या जिल्द-साज से बदलवालें या हमको भेज दें। हम बदल कर भेज देंगे अन्यथा महान् विपर्यय हो जायगा। अज्ञानता के कारण भूलें हुई, क्षमा करना।

विनीत : पं० सरनाराम जैन

छत्ता वारूमल, पो० सहारनपुर यू० पी०

१-८-५६

# शुद्धि-पत्र—श्री द्रव्यसंग्रह परमागम

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ८ | २५ | नाम | माप |
| २३ | ८ | (गुण) (गुण) | × |
| २३ | १० | पंचास्तिकाय से | पचास्तिकाय सूत्र ४१-८२ टीका से |
| २३ | अंतिम | यह पंक्ति निकाल दें | Cancelled |
| २४ | १ | " " " | Cancelled |
| २६ | १० | ज्ञान-गुण और दर्शन-गुण | शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दर्शन |
| २६ | १३ | गुण | द्रव्य |
| २६ | १४ | दो गुणों के | शुद्धज्ञान दर्शन दो के |
| २६ | १६ | गुणों | × |
| २७ | ११ | गुण | शुद्ध ज्ञान दर्शन |
| २७ | १२ | ज्ञान गुण और दर्शन गुण | ज्ञानदर्शनमयी आत्मा |
| ३२ | ३ | आरोप से | व्यवहार नय से |
| ३३ | १ | राग का | राग को |
| ४३ | २ | प्रदेशवत्त्व गुण को | असंख्यातप्रदेशस्वभावी आत्मा को |
| ४३ | २ | प्रदेशवत्त्व गुण की | प्रदेशों की |
| ४३ | ९, १०, ११, १२ | सब पैराग्राफ | निकाल दें (Cancelled) |
| ४३ | १४ | अर्थात् प्रदेशवत्त्व गुणको | × |
| ४३ | १५ | प्रदेशत्त्व गुण से | प्रदेशों से |
| ४३ | १५ | गुण गुणी भेद नहीं है | × |
| ४३ | १७ | प्रदेशवत्त्व गुण की | × |
| ५२ | ८ | मूल पदार्थ | मूल पदार्थ द्रव्यदृष्टि से |

५२ ९ से १२ तक "यह अधिकार···से लेकर···का विषय है।" इतना पाठ निकाल दें (Cancelled)।

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ५३ | ११ | ही रह जाता है | परिणत होता है। |

पृष्ठ ९६ सूत्र नं० ४६ में निश्चय चारित्र का वर्णन है जो पांचवें गुणस्थान से प्रारम्भ होकर बारहवें में पूर्ण होता है किन्तु यह उतने अंश का निरूपण है कि जितने अंश में ज्ञानी के चारित्र गुण का शुद्ध परिणमन हो रहा है। निर्विकल्प है। राग रहित है। शुभ अशुभ भाव से भिन्न शुद्ध अंश रूप है। चारित्र गुण की अखण्ड पर्याय में जितना शुद्ध अंश है–यह केवल उस शुद्ध अंश का निरूपण है।

पृष्ठ १०४ सूत्र नं० ६ यह सातवें से बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि की मुख्यता से निरूपण है। और पृष्ठ १०३ सूत्र ५ में छठे गुण स्थानवर्ती मुनि की मुख्यता से निरूपण है। सैद्धांतिक बात तो यह है कि ज्ञानी में जहां जितनी शुद्धता है वहां उतना निश्चय मोक्षमार्ग है और जहां जितना शुभ राग है वहां उतना व्यवहार मोक्षमार्ग। व्यवहारी मुनि में शुद्ध अंश की गौणता करके शुभ की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं और उत्तम मुनि में व्यवहार अंश को गौण करके शुद्ध की मुख्यता से वर्णन करते हैं।

————

# शुद्धिपत्र—श्री द्रव्यसंग्रह परमागम

पृष्ठ ३८ पंक्ति ६ 'सद्भूत' के स्थान पर 'असद्भूत'।

पृष्ठ ४५ पंक्ति १२ 'जीव समास में शरीर को जीव कहा है' के स्थान पर 'जीव समास में संसारी सर्व जीवों को अशुद्धनय से जीव कहा है'

पृष्ठ ४५ पंक्ति १४ 'जीवसमास में पर-द्रव्य को व्यवहार और स्व-द्रव्य को निश्चय कहा है' के स्थान पर 'जीवसमाज में संसारी सर्व जीवों को शुद्धनिश्चयनय से तीनों काल शुद्ध कहा है और उसे ही अशुद्धनय से पर्याय में भूमिकानुसार अशुद्ध कहा है'।

पृष्ठ ४५ पंक्ति १६ 'संयोगरूप' के स्थान पर 'अशुद्धरूप' है।

पृष्ठ ४५ पंक्ति १९ 'आत्मद्रव्य में आत्मा का श्रद्धान करना है' के स्थान पर 'शुद्धनय कथिंत त्रैकालिक निज शुद्ध आत्मा का श्रद्धान और आश्रय करना चाहिए'।

पृष्ठ ५५ पंक्ति २३ 'कमाभाव' के स्थान पर 'कर्माभाव' है।

पृष्ठ ७२ पंक्ति २ से ५ तक पहले उत्तर के स्थान पर इस प्रकार समझें 'वर्तमान पर्याय में जो अशुद्धता है वह एक ही पर्याय में दो रूप है [द्विरूपता है]। (१) नये विकार की उत्पत्ति भावास्रव है और (२) वही अशुद्धभाव जीव के विकास को रोकता है—रून्धता है—इससे उसे भावबन्ध कहा जाता है [इसमें विशेष बात यह है कि तेरहवां गुणस्थान में योग को भावास्रव कहा है किन्तु वह जीव के विकास को रोकता नहीं है और हर समय शुद्धि की वृद्धिरूप निर्जरा होती ही है। इससे वहां औदयिक भाव होने पर भी उसे क्षायिकी क्रिया कही है—श्री प्रवचनसार सूत्र ४५]

पृष्ठ ७२ पंक्ति ८ से १३ "इसका.....से लेकर.....आ सकता था" तक निकाल दें। Cancelled.

पृष्ठ ७३ पंक्ति ५ पर इतना पाठ और बढ़ा लें [ दोनों को लक्षण द्वारा भिन्न समझाने के लिये वृहद्रव्यसंग्रह की संस्कृत टीका में तथा जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में दो समय कहा है]

पृष्ठ ७३ पंक्ति ६ 'भावरसंवर' के स्थान पर 'भावसंवर' है।

पृष्ठ ७३ पंक्ति २२ 'देकर खिरते हैं' के स्थान पर 'देकर संवर-पूर्वक खिरते हैं'।

पृष्ठ ७३ पंक्ति २३ अन्त में इतना पाठ और बढ़ावें [उसमें जितना कर्मोदय है उतना तो युक्त होता ही नहीं ]।

पृष्ठ ७४ पंक्ति ४ 'उपादान दृष्टि से कुछ नही' के स्थान पर 'सामान्यता से कुछ अन्तर नहीं'।

पृष्ठ ७४ पंक्ति ६ से १२ तक 'किन्तु.....से लेकर.....दो नाम हैं' तक का पाठ निकाल दें। उसके स्थान पर यह पाठ है– 'शुद्धि की उत्पत्ति संवर है और आंशिक रूप शुद्धि की वृद्धि निर्जरा है। दोनों में यह विशेषता है किन्तु पर्याय एक ही है'।

पृष्ठ ७५ पक्ति ११-१२ पहला उत्तर निकाल कर इस प्रकार समझें 'शुद्ध भाव की आंशिक वृद्धि भावनिर्जरा है और ज्ञानादिक की संपूर्ण शुद्धता प्रगट होना भावमोक्ष है।

पृष्ठ ८३ पक्ति १ '(अर्थात् पर्यायार्थिकनय के कथन से)' यह ब्रैकट निकाल दें। Cancelled

पृष्ठ ८३ पंक्ति ३ '(अर्थात् द्रव्यार्थिक नय के कथन से) यह ब्रैकट निकाल दें। Cancelled

पृष्ठ ८३ पंक्ति ५ 'सदा' शब्द निकाल दें। Cancelled

पृष्ट ८३ पंक्ति ६ से १० तक का भावार्थ निकाल दें Cancelled।
इसके स्थान पर यह भावार्थ है "यहां वीतरागभाव को निश्चय मोक्षमार्ग तथा अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति रूप ९ तत्वों के श्रद्धान-ज्ञान तथा व्रत समिति गुप्ति रूप शुभ प्रवृत्ति को (शुद्ध भाव के सहचर राग को) व्यवहार रत्नत्रय कहा है।

पृष्ठ ८४ पंक्ति २६ 'व्यवहार श्रद्धान' के स्थान पर 'विपरीत श्रद्धान'।

पृष्ठ ८७ पंक्ति १९-२० (भेद रहित जानना) के स्थान पर (सामान्यग्राहक) है।

पृष्ठ ८७ पंक्ति २० (भेद सहित जानना) के स्थान पर (विशेष ग्राहक अर्थात् स्व पर प्रकाशक) है।

पृष्ठ ९३ पंक्ति ५-६-७ पहला उत्तर निकाल दें। उसके स्थान पर यह उत्तर है 'धर्म करने वाले या धर्मी होने की भावना वाले जीव को अशुभ (पाप) उपयोग करने की भावना होती नहीं किन्तु उसे उस भूमिका में शुभ (पुण्य) भाव होता है परन्तु उसे धर्म या धर्म का कारण मानता नहीं तथा पुण्य से संवर निर्जरा मानता नहीं कारण कि उसका फल संसार ही है। इसलिये धर्मी जीव राग का कर्त्ता होना चाहता ही नहीं किन्तु ज्ञाता ही रहना चाहता है।

पृष्ठ १०४ पंक्ति १६ उपेक्षा के आगे (वीतराग-मध्यस्थ) और बढ़ावें।

———

श्रीसद्‌गुरुदेवाय नमः

# श्री द्रव्यसंग्रह परमागम

अन्तस्तत्त्वप्रकाशनी टीका सहित

## मूल सूत्र (प्रातः पाठार्थ)

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥२॥

तिक्काले चदुपाणा इन्दियबलमाऊप्राणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥४॥

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदिओही अणाण णाणाणि ।
मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्ख-परोक्खभेयं च ॥५॥

अट्ठचदुणाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥

वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥७॥

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥८॥

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

पुढविजलतेयवाऊ वण्णप्फदि विविहथावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी ॥११॥
समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
बादर सुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥
मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥
णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता ॥१४॥
अज्जीवो पुण णेओ पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥१५॥
सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेद-तमछाया ।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥
गइ परिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥
ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥
अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥
धम्माऽधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये ।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥
दव्व पखिट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥
लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंखदव्वाणि ॥२२॥
एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

संति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा जह्मा ।
काया इव बहुदेसा तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥
होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥
एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥
जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणु उट्टद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥
आसव बंधण संवर णिज्जर मोक्खो सपुण्णपावा जे ।
जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामो ॥२८॥
आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥
मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओऽथ विण्णेया ।
पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदादु पुव्वस्स ॥३०॥
णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥
बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो ।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥३२॥
पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बंधो ।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होति ॥३३॥
चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥३४॥
तवसमिदिगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य ।
चारित्तं बहुभेयं णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥
जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया तस्सऽणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेयो स भावमुक्खो दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो ॥३७॥
सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा ।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥
सम्मद्दंसणणाणं चरणं मुक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥
रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि ।
तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥
जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि ॥४१॥
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेय भेयं तु ॥४२॥
जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समए ॥४३॥
दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा ।
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥४४॥

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियम् ॥४५॥

वहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचरित्तं ॥४६॥

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ।
तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु ।
थिरमिच्छहि जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

पणतीस सोलछप्पणचउदुगमेगं च जवह ज्झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाण अण्णं च गुरूवएसेण ॥४९॥

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥
णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा ।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥
दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी झेओ ॥५२॥
जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो ।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥
दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्चसुद्धं स मुणी णमो तस्स ॥५४॥
जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहु ।
लद्धूण य एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं ॥५५॥
मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥५६॥
तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा ।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥
दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा
दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण
णेमिचन्द मुणिणा भणियं जं ॥५८॥

## श्री द्रव्यसंग्रह हरिगीत

(प्रातः पाठार्थ तथा इकट्ठा मिलकर बोलने के लिये)

मंगलाचरण प्रतिज्ञा तथा प्रयोजन

द्रव्य जीव अजीव का उपदेश जिस ने दे दिया ।
देवो के इन्द्रों के समूह करते है जिस की वन्दना ॥
ऐसे जिनवरवृषभ को वन्दूं मै नित प्रति सर्वदा ।
जिन की विनय में शीश मेरा हर समय रहता झुका ॥१॥

आत्मा का सोपाधि निरूपाधि स्वरूप

जीव[१] अरु उपयोगमय[२] बिनमूर्त[३] करता[४] भोगता[५] ।
स्वदेह के प्रमाण[६] वो संसारी[७] सिद्ध[८] अरु ऊर्ध्वगा[९] ।।२।।

(१ जीव अधिकार

त्रयकाल में स्वास आयु बल इन्द्रिय चारों प्राण है ।
व्यवहार से वो जीव है निश्चय से जिस के चेतना ।।३।।

(२) उपयोग अधिकार

उपयोग दो विध, ज्ञान दर्शन, दर्श भेद तो चार हैं ।
चक्षु अचक्षु और अवधि दर्श केवल जानना ।।४।।
अष्टविध है ज्ञान मति श्रुत अवधि त्रय अज्ञान भी ।
मनः पर्यय केवल और फिर प्रत्यक्ष और परोक्ष भी ।।५।।
सामान्य से तो आठ ज्ञान अरु चार दर्शन जीव का ।
लक्षण कहा व्यवहार से, निश्चय से शुद्ध दृग ज्ञान जो ।।६।।

(३) अमूर्त अधिकार

रस वर्ण पंच अरु गंध दो फर्स आठ निश्चय से नहीं ।
जिव में अमूर्त्त यु, मूर्तिक व्यवहार से बंध कारणे ।।७।।

(४) कर्त्ता अधिकार

पुद्गल करम आदि का कर्ता जीव है व्यवहार से ।
निश्चय से चेतन कर्म का अरु शुद्ध से शुद्ध भाव का ।।८।।

(५) भोक्ता अधिकार

व्यवहार से पुद्गल करम फल सुख दुख को भोगता ।
आतम के चेतन भाव को निश्चय से भोगे आत्मा ।।९।।

(६) स्वदेहपरिमाण अधिकार

समुद्घात को छोड़ कर संकोच अरु विस्तार से ।
देह के छोटे बड़े आकार है व्यवहार से ।।

असंख्यात है प्रदेश और वो भी बराबर लोक के।
निश्चय से तो इस रूप है चेतन स्वरूपी आतमा ॥१०॥

(७) संसारी अधिकार

पृथ्वी जल अरु तेज वायु और जो है वनसपती।
विविध एक इन्द्रीय थावर, जीव होते ये सभी॥
त्रस जीव तो दो तीन चार अरु पाँच इन्द्रीये कहे।
शख चींटी भ्रमर और मनुष्य आदि रूप हैं॥११॥
संज्ञी असंज्ञी है पाँच इन्द्रिय, शेष सब मन रहित है।
सूक्ष्म बादर इन्द्रि इक, पर्याप्त अनपर्याप्त सब॥१२॥
मार्गणा गुणथान अरु जिवथान चौदह रूप से।
व्यवहार से संसारी सब, निश्चय से सब ही शुद्ध हैं॥१३॥

(८) सिद्ध तथा (९) ऊर्ध्वगमन स्वभाव अधिकार

निष्कर्म[1] अष्टगुणो सहित[2] देह चरम से कुछ न्यून[3] सिद्ध[4]।
नित्य[5] अरु लोकाग्रथित[6], उत्पादव्ययसंयुक्त[7] है॥१४॥

अजीव द्रव्य

अजीव पुद्गल धर्म और अधर्म काल आकाश है।
रूपादि गुण युत मूर्त पुद्गल शेष अमूर्तिक जानना॥१५॥

पुद्गल की १० समान जातीय द्रव्य पर्यायि

शब्द[1] बंध[2] अरु थूल[3] सूक्ष्म[4] शक्ल[5] छाया[6] भेद[7] तम[8]।
उद्योत[9] आतप[10] सहित, पुद्गल द्रव्य की पर्यायें है॥१६॥

धर्म द्रव्य का स्वरूप

गमन परिणत जीव पुद्गल के सहायी गमन में।
धर्म, जल मच्छली के ज्युं, ठहरे को नांहि चलाये वो॥१७॥

अधर्म द्रव्य का स्वरूप

थान परिणत जीव पुद्गल के सहायी थान में।
अधर्म, छाया पथिकवत्, ठहराये चलते को नहीं॥१८॥

आकाश द्रव्य का स्वरूप

जीवादि के अवकाश दान में योग्य जो, आकाश वो।
आकाश लोक अलोक ये दो भेद उसके जिन कहे ॥१९॥

लोक अलोक का विभाग

जीव पुद्गल धर्म अधर्म अरु काल जितने में रहें।
लोक है आकाश वो उस से परे है अलोक जो ॥२०॥

काल द्रव्य का स्वरूप

द्रव्यों के वर्तन रूप अरु परिणाम आदि लक्ष्य है।
काल है व्यवहार वो निश्चय है लक्षण वर्तना ॥२१॥

निश्चय काल द्रव्य का विशेष स्वरूप

एक एक लोकाकाश के प्रदेश में इक इक रहे।
रत्नों की राशि तुल्य जो असंख द्रव्य काल वो ॥२२॥

पञ्चास्तिकाय

द्रव्य यूं छ भेद जीवाजीव के प्रभेद से।
पाँच 'अस्तिकाय' जानो काल द्रव्य को छोड़ के ॥२३॥

अस्तिकाय का स्वरूप

"है" इसलिये 'अस्ति' कहे बहुदेश से 'काया' कहे।
प्रदेश कायावत् बहुत, यू 'अस्तिकाया' जानने ॥२४॥

प्रदेश सख्या

असंख धर्म अधर्म जीव प्रदेश अनन्त आकाश में।
मूर्त्त विध त्रय, काल इक, इस से नहीं है 'काय' वो ॥२५॥

पुद्गल का एक अणु भी कायावान् है

एकदेशी भी अणु नाना स्कंध प्रदेश से।
उपचार से बहुदेशी वो काया कहा सर्वज्ञ ने ॥२६॥

एक प्रदेश का नाम

अविभागि पुद्गल का अणु रोके है जिस आकाश को।
प्रदेश है सब अणुवों को थान दान में है समर्थ वो ॥२७॥

आस्रवादि का लक्षण और उनके कहने की प्रतिज्ञा

आसरव अरु बंध संवर निर्जरा अरु मोक्ष जो।
पुण्य पाप सहित कहेंगे जीवाजीवविशेष को ॥२८॥

भावास्रव द्रव्यास्रव का स्वरूप

परिणाम से जिस आत्म के आता है पुद्गल कर्म, उसे।
भावास्रव जानो जिनुक्त कर्मों का आना दूसरा ॥२९॥

भावास्रव के भेद

भावास्रव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमत, योग, कषाय जो।
पाँच पाँच अरु पाँचदस त्रय चार क्रमशः भेद है ॥३०॥

द्रव्यास्रव के भेद

ज्ञानावरणादि के योग्य आता है पुद्गल कर्म जो।
द्रव्यास्रव जानो वही बहुभेद उसके जिन कहे ॥३१॥

भावबंध और द्रव्यबंध का स्वरूप

बंधता करम जिस भाव से चेतन के है भाव बंध वो।
परस्पर प्रवेश दूजा कर्म आत्म प्रदेश का ॥३२॥

भावबंध और द्रव्यबंध के भेद

प्रकृति प्रदेश थिति अनुभाग बंध ये चार है।
योग से प्रकृति प्रदेश, अनुभाग थिति हों कषाय से ॥३३॥

भावसंवर और द्रव्यसंवर का स्वरूप

भाव चेतन कर्म आस्रव रोध में कारण बने।
भाव संवर वो कहा रुकने पे पुद्गल दूसरा ॥३४॥

भावसंवर के भेद

तप समिति गुप्ति धर्म प्रेक्षा जयपरीषह ये सभी।
चारित्र, सब बहुभेद मे, ये भावसंवर के कहे ॥३५॥

आकाश द्रव्य का स्वरूप

जीवादि के अवकाश दान में योग्य जो, आकाश वो।
आकाश लोक अलोक ये दो भेद उसके जिन कहे ॥१६॥

लोक अलोक का विभाग

जीव पुद्गल धर्म अधर्म अरु काल जितने में रहें।
लोक है आकाश वो उस से परे है अलोक जो ॥२०॥

काल द्रव्य का स्वरूप

द्रव्यों के वर्तन रूप अरु परिणाम आदि लक्ष्य है।
काल है व्यवहार वो निश्चय है लक्षण वर्तना ॥२१॥

निश्चय काल द्रव्य का विशेष स्वरूप

एक एक लोकाकाश के प्रदेश में इक इक रहे।
रत्नों की राशि तुल्य जो असंख द्रव्य काल वो ॥२२॥

पचास्तिकाय

द्रव्य यूं छ भेद जीवाजीव के प्रभेद से।
पाँच 'अस्तिकाय' जानो काल द्रव्य को छोड़ के ॥२३॥

अस्तिकाय का स्वरूप

"है" इसलिये 'अस्ति' कहे बहुदेश से 'काया' कहे।
प्रदेश कायावत् बहुत, यूं 'अस्तिकाया' जानने ॥२४॥

प्रदेश सख्या

असंख धर्म अधर्म जीव प्रदेश अनन्त आकाश में।
मूर्त्त विध त्रय, काल इक, इस से नहीं है 'काय' वो ॥२५॥

पुद्गल का एक अणु भी कायावान् है

एकदेशी भी अणु नाना स्कंध प्रदेश से।
उपचार से बहुदेशी वो काया कहा सर्वज्ञ ने ॥२६॥

एक प्रदेश का नाम

अविभागि पुद्गल का अणु रोके है जिस आकाश को।
प्रदेश है सब अणुवों को थान दान में है समर्थ वो ॥२७॥

आस्रवादि का लक्षण और उनके कहने की प्रतिज्ञा

आसरव अरु बंध संवर निर्जरा अरु मोक्ष जो।
पुण्य पाप सहित कहेंगे जीवाजीवविशेष को ॥२८॥

भावास्रव द्रव्यास्रव का स्वरूप

परिणाम से जिस आत्म के आता है पुद्गल कर्म, उसे।
भावास्रव जानो जिनुक्त कर्मों का आना दूसरा ॥२९॥

भावास्रव के भेद

भावास्रव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमत, योग, कषाय जो।
पाँच पाँच अरु पाँचदस त्रय चार क्रमशः भेद है ॥३०॥

द्रव्यास्रव के भेद

ज्ञानावरणादि के योग्य आता है पुद्गल कर्म जो।
द्रव्यास्रव जानो वही बहुभेद उसके जिन कहे ॥३१॥

भावबंध और द्रव्यबंध का स्वरूप

बंधता करम जिस भाव से चेतन के है भाव बंध वो।
परस्पर प्रवेश दूजा कर्म आत्म प्रदेश का ॥३२॥

भावबंध और द्रव्यबंध के भेद

प्रकृति प्रदेश थिति अनुभाग बंध ये चार है।
योग से प्रकृति प्रदेश, अनुभाग थिति हों कषाय से ॥३३॥

भावसंवर और द्रव्यसंवर का स्वरूप

भाव चेतन कर्म आस्रव रोध में कारण बने।
भाव संवर वो कहा रुकने पे पुद्गल दूसरा ॥३४॥

भावसंवर के भेद

तप समिति गुप्ति धर्म प्रेक्षा जयपरीषह ये सभी।
चारित्र, सब बहुभेद में, ये भावसंवर के कहे ॥३५॥

निर्जरा का स्वरूप

भुक्त रस पुद्गल करम यथाकाल अरु तप से खिरें।
जिस भाव से वह निर्जरा, कर्मों का खिरना दूसरा ॥३६॥

मोक्ष का स्वरूप

सब कर्म क्षय कारण बने परिणाम जो इस आत्म का।
भाव में है मोक्ष वो पुद्गल पृथक् हो दूसरा ॥३७॥

पुण्य पाप का स्वरूप

पुण्य पाप हों जीव वो, शुभ अशुभ से जो युक्त हों।
साता सुआयु नाम गोत्र है पुण्य बाकी पाप हैं ॥३८॥

मोक्ष का कारण

सम्यक् जो दर्शन ज्ञान और चारित्र कारण मोक्ष का।
व्यवहार से, निश्चय से तो उनतीनमय निज आतमा ॥३९॥

उन तीनमय निज आत्मा के मोक्ष का कारण होने मे हेतु

रत्नत्रय रहता नहीं जीव छोड दूजे द्रव्य में।
यूं आतमा उनतीनमय निश्चय से कारण मोक्ष का ॥४०॥

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

जीवादि का श्रद्धान समकित, रूप है वह आत्म का।
विपरीत जो भिनिवेश उसको छोड़ सम्यक्, ज्ञान हो ॥४१॥

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

संशय विमोह विभ्रम रहित अपने पराये रूप को।
साकार जाने ज्ञान सम्यक् है अनेकों भेद वो ॥४२॥

दर्शनोपयोग का स्वरूप

अर्थों में भेद करे नही अरु सब के सत ही पदार्थ को।
आकार को करके नही-निराकार जाने दर्श वो ॥४३॥

### दर्शन और ज्ञान की उत्पत्ति का नियम

दर्शन हि पूर्वक ज्ञान हो छद्मस्थ के, इक साथ ना।
पर केवली भगवान् में तो साथ हैं उपयोग दो ॥४४॥

### व्यवहार चारित्र का निरूपण

अशुभ से निर्वृत्ति और प्रवृत्ति शुभ-चारित्र है।
व्रतसमितिगुप्तिरूप वो व्यवहार से जिनवर कहा ॥४५॥

### निश्चय चारित्र का स्वरूप

बाह्याभ्यन्तर कर्म का ज्ञानी के होता रोध जो।
चारित्र सम्यक् है वही संसार कारण नाश को ॥४६॥

### ध्यानाभ्यास की प्रेरणा

मोक्षमारग दो हि विध मुनि ध्यान से प्राप्ति करे।
इस कारणे प्रयत्नचित्त अभ्यास उसका तुम करो ॥४७॥

### ध्यान की सिद्धि का उपाय

विचित्र ध्यान की सिद्धि को जो मन को थिर करना चाहो।
तो इष्ट निष्ट पदार्थ में, मोह राग द्वेष को मत करो ॥४८॥

### ध्यान योग्य मन्त्र

पैंतीस सोलह पाँच छह दो चार इक ध्याओ जपो।
परमेष्ठी वाचक तथा अन्य गुरु उपदेश सो ॥४९॥

### (१) अरहन्त परमेष्ठी का स्वरूप

नष्ट घातिकर्म[1] अरु शुभदेह में थित[2], शुद्ध[3] जो।
ज्ञान-दर्शन-वीर्यमय[4] अरहन्त आतम ध्यावजो ॥५०॥

### (२) सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

नष्ट अष्ट कर्म रु देह[1], ज्ञा द्रष्टा लोकालोक के[2]।
लोक शिखिर में थित[3], पुरुषाकार[4], ध्याओ सिद्ध को ॥५१॥

(३) आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

प्रधान दर्शन ज्ञान तप-चारित्र-वीर्याचार में ।
निज पर को जोड़े जो मुनि आचार्य ध्याओ उसे ॥५२॥

(४) उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

रत्नत्रय संयुक्त, नित रत धर्म के उपदेश में ।
अति श्रेष्ठ यतियों में उपाध्याय नमूं उसके लिये ॥५३॥

(५) साधु परमेष्ठी का स्वरूप

ज्ञानदर्शनपूर्ण, नितशुध, मोक्ष का मारग है जो ।
चारित्र को-निश्चय से साधे साधु मुनि उसको नमूं ॥५४॥

निश्चय ध्यान का स्वरूप

चिन्तन भि कुछ करता हुवा जब प्राप्त हो एकत्व को ।
निरीहवृत्ति युक्त हो तो ध्यान निश्चय उसका वो ॥५५॥

परम ध्यान का स्वरूप

चेष्टा को मत करो, बोलो न चिन्तो मन से कुछ ।
आत्मा आतम में थित हो-लीन हो-ध्यान हो परं ॥५६॥

ध्यान की योग्यता

तप श्रुत अरु व्रत का धारी ध्यान रथ धारक बने ।
उस ध्यान सिद्धि के लिये उन तीन में रत हो सदा ॥५७॥

ग्रन्थ समाप्ति

दोष संचय रहित[१] जो अरु श्रुत के ज्ञाता पूर्ण[२] जो ।
नाथ मुनियों के हैं[३] जो, द्रवसंग्रह ये वो शोध दो ॥
अल्पधारि सूत्र के मुनि भणित नेमिचन्द्र जो ।
"शरणा" ज्ञायक का मुझे त्रयकाल शुद्ध है जोत जो ॥५८॥

———

## पहला अध्याय

# सामान्य द्रव्य निरूपण

(सूत्र १ से २७ तक)

### मंगलाचरण प्रतिज्ञा तथा प्रयोजन

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ।।१।।

जीवं अजीवं द्रव्यं जिनवरवृषभेण येन निर्दिष्टम् ।
देवेन्द्रवृन्दवन्द्यं वन्दे त सर्वदा शिरसा ।।१।।

सूत्रार्थ—जिस जिनवरवृषभ (तीर्थंकर या ऋषभनाथ भगवान्) ने जीव, अजीव द्रव्य कहा है तथा जो देवों के इन्द्रों के समूह कर वन्दनीय है, उसको मैं सदा मस्तक से नमस्कार करता हूं ।

प्रश्न १—इस ग्रन्थ का क्या नाम है और क्यों ?

**उत्तर—इस ग्रन्थ का नाम श्री द्रव्यसंग्रह है क्योंकि इसमें छः द्रव्यों का और उनके गुण पर्यायों का कथन है ।**

प्रश्न २—ग्रन्थकर्त्ता का नाम तथा परिचय क्या है ?

**उत्तर—ग्रन्थकर्त्ता का नाम आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती है जो गोमट्टसार आदि अनेक प्रसिद्ध सूत्र ग्रन्थों के कर्त्ता हैं ।**

प्रश्न ३—यह किस अनुयोग का शास्त्र है ?

**उत्तर—यह द्रव्यानुयोग का शास्त्र है । परमागम है ।**

प्रश्न ४—इस ग्रन्थ मे कितने अध्याय हैं ?

**उत्तर—इस ग्रन्थ में तीन अध्याय हैं । पहला छः द्रव्यों का सामान्य निरूपण है जिस में चौदहवें सूत्र तक सामान्य जीव द्रव्य का निरूपण है फिर २७वें सूत्र तक पुद्गलादि पाँच द्रव्यों का सामान्य निरूपण है । दूसरे अध्याय में २८ से ३८ तक आस्रवादि ७ तत्त्वों का वर्णन है और ३९ से अन्त तक तीसरे**

अध्याय में मोक्षमार्ग और मोक्षमार्ग के अन्तर्गत ध्यान का निरूपण है।

प्रश्न ५—इसके निरूपण का क्या क्रम है ?

उत्तर—पहले सूत्र में मङ्गलाचरण प्रतिज्ञा तथा प्रयोजन है। २ से १४ तक १३ सूत्रों में जीव द्रव्य का निरूपण हैं, फिर १५से२७ तक १३ सूत्रोंमें अजीव द्रव्य का, फिर २८ से ३८ तक ११ सूत्रों में आस्रवादि ७ तत्त्वों का, फिर ३९ से ४६ तक ८ सूत्रों में मोक्षमार्ग का, फिर ४७ से ५७ तक ११ सूत्रों में ध्यान का और अन्तिम एक सूत्र में ग्रन्थ-समाप्ति इस प्रकार ५८ सूत्रों में पूर्ण ग्रन्थ है।

प्रश्न ६—पहले सूत्र मे क्या वर्णन है ?

उत्तर—मङ्गलाचरण प्रतिज्ञा तथा प्रयोजन का वर्णन है।

प्रश्न ७—मङ्गलाचरण मे ग्रथ-कर्ता ने किस को नमस्कार किया है ?

उत्तर—उस भगवान् को नमस्कार किया है जिसने अपनी दिव्य ध्वनि द्वारा अन्तस्तत्त्व और वहिस्तत्त्व का वर्णन किया है तथा जो अनेकों देवेन्द्रों द्वारा वन्दनीय है। जीव अजीव का उपदेश उन के धर्म में बड़प्पन का सूचक है और देवेन्द्रों द्वारा वन्दनीय उनके पुण्य में बड़प्पन का द्योतक है। तीर्थंकर से बड़ा जगत् में धर्मात्मा भी कोई नहीं होता तथा पुण्यशाली भी कोई नहीं होता ऐसा यहाँ मङ्गलाचरण में प्रगट करके उन्हें नमस्कार किया है।

प्रश्न ८—इस ग्रन्थ के बनाने का क्या प्रयोजन है।

उत्तर—जीव और अजीव द्रव्य का भेद-विज्ञान। अनादि-काल से जीव की पर्याय-बुद्धि है। उसको छोड़ कर द्रव्यदृष्टि करनी है। जीव अजीव में भेद-विज्ञान करके जीव-द्रव्य का श्रद्धान उपादेय है और अजीव-द्रव्य का जीवपने से श्रद्धान हेय है। श्री इष्टोपदेश में कहा है:—

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः ।
यदन्यदुच्यते किंचित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ॥५०॥

जीव जुदा पुद्गल जुदा, यही तत्त्व का सार ।
अन्य कछू व्याख्यान जो, याही का विस्तार ॥५०॥

**अर्थ—'जीव भिन्न है, पुद्गल भिन्न है,' बस इतना ही तत्त्व के कथन का सार है, इसी में सब कुछ आ गया। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी कहा जाता है, वह सब इसी का विस्तार है।**

प्रश्न ६—इस सूत्र का सार क्या है ?

उत्तर—परम पारिणामिक जो अन्तस्तत्त्व है वह जुदा है और शेष सब बहिस्तत्त्व है वह जुदा है। अन्तस्तत्त्व उपादेय है शेष सब हेय है ऐसी भेद बुद्धि का होना ही इसका प्रयोजन है—सार है। श्रीसमयसार कलश में कहा है:—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥१३१॥

अर्थ—जो कोई सिद्ध हुये है वे भेद-विज्ञान से सिद्ध हुये है और जो बंधे है वे उसी भेद-विज्ञान के ही अभाव से बन्धे है।

## सामान्य जीव द्रव्य का निरूपण

(सूत्र २ से १४ तक)

आत्मा का सोपाधि, निरुपाधि स्वरूप

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥२॥

जीवः[1] उपयोगमयः[2] अमूर्तिः[3] कर्ता[4] स्वदेहपरिमाणः[5] ।
भोक्ता[6] संसारस्थः[7] सिद्धः[8] सः विस्रसा ऊर्ध्वगतिः[9] ॥२॥

**सूत्रार्थ—जो (१) जीव है (२) उपयोगमय है (३) अमूर्त्त है (४) कर्त्ता है (५) भोक्ता है (६) अपने शरीर के बराबर है (७) संसार**

में ठहरा हुआ है (८) सिद्ध है और (९) स्वभाव से ऊपर जाने वाला है वह आत्मा है ।

## प्रश्नोत्तार

प्रश्न १०—दूसरे सूत्र में क्या वर्णन है ?

उत्तर—आत्मा के सोपाधि, निरुपाधि स्वरूप का वर्णन है । अनादि अनन्त सत्, अहेतुक-स्वरूप को निरुपाधि स्वरूप कहते हैं; और कर्म-जनित-स्वरूप को सोपाधि-स्वरूप कहते हैं ।

प्रश्न ११—कौन सूत्रों मे सोपाधि स्वरूप कहा है तथा कौन मे निरुपाधि ?

उत्तर—सूत्र ३ से १३ तक तो सोपाधि, निरुपाधि दोनों स्वरूप दिखलाये हैं । सोपाधि स्वरूप को व्यवहार नय आश्रित दिखलाया है और निरुपाधि स्वरूप को निश्चयनयाश्रित दिखलाया है । चौदहवें सूत्र में केवल निरुपाधि स्वरूप दिखलाया है ।

प्रश्न १२—इन दोनों स्वरूपो के दिखलाने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर—हमारी आत्मा में (संसारी में) सोपाधि, निरुपाधि दोनों स्वरूप विद्यमान है उन में से सोपाधि स्वरूप तो छोड़ने योग्य है और निरु-पाधि स्वरूप श्रद्धेय है, उपादेय है, ग्रहण करने योग्य है। यह प्रयोजन है ।

प्रश्न १३—आत्मा किसको कहते है ?

उत्तर—जिसमें ये नौ बातें पाई जायें उसको आत्मा कहते हैं। जो (१) जीव है (२) उपयोगमय है (३) अमूर्त्त है (४) कर्त्ता है (५) भोक्ता है (६) स्वदेह परिमाण है (७) संसारी है (८) सिद्ध है (९) स्वभाव से ऊर्ध्वगमन वाला है, वह आत्मा है ।

प्रश्न १४—इन नौ अधिकारो के कहने का क्या क्रम है ?

उत्तर—सूत्र नं० ३ में जीव अधिकार, सूत्र नं० ४, ५, ६ तीन में उपयोग अधिकार, सूत्र नं० ७ में अमूर्त्त, सूत्र नं० ८ में कर्त्तृत्व,

सूत्र नं० ९ में भोक्तृत्व, सूत्र नं० १० में स्वदेहपरिमाण, सूत्र नं० ११, १२, १३ में संसारित्व, सूत्र नं० १४ में सिद्धत्व और ऊर्ध्व-गमनस्वभाव इन दो अधिकारों का वर्णन है।

प्रश्न १५—इसका संक्षिप्त निरूपण किस प्रकार है ?

उत्तर—उपयोग और संसारी अधिकार के तीन २ सूत्र, सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमन स्वभाव इन दो अधिकारो का एक सूत्र और शेष अधिकारों का एक २ सूत्र है।

प्रश्न १६—इस सूत्र का निर्माण किस आगम आधार से हुवा है ?

उत्तर—ग्रन्थकार ने यह सूत्र श्रीपंचास्तिकाय गाथा २७, २८, २९ पर से रचा है तथा सूत्र का शीर्षक भी उन्ही सूत्रो के शीर्षक से लिया गया है।

प्रश्न १७—इस सूत्र को किस प्रकार समझना चाहिये ?

उत्तर—इसको द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों द्वारा ग्रंथकर्त्ता ने निरूपण किया है उसी प्रकार समझना चाहिये। द्रव्यार्थिक नय से अन्तस्तत्त्व जो उपादेय है उसका ख्याल आ जाता है और पर्यायार्थिक नय से बहिस्तत्त्व में हेयबुद्धि हो जाती है। प्रत्येक अधिकार में इनको सावधानता पूर्वक समझना चाहिये।

प्रश्न १८—हेय, ज्ञेय और उपादेय का क्या अर्थ है ?

उत्तर—हेय=त्यागने योग्य, ज्ञेय=जानने योग्य, उपादेय=आदर करने योग्य, ग्रहण करने योग्य। (१) जीव द्रव्य की अशुद्ध दशा दुःखरूप होने से त्यागने योग्य है—हेय है तथा पर निमित्त, विकार और व्यवहार का आश्रय हेय है। वही आत्मा बोध को प्राप्त होता है कि जो व्यवहार में अनादरवान् है-उपेक्षावान् है-अनासक्त है, और जो व्यवहार में आदरवान् है-आसक्त है वह आत्मबोध को प्राप्त नहीं होता। (२) स्व-पर अर्थात् सात तत्व सहित जीवादि छहो द्रव्यों का स्वरूप ज्ञेय है (३) एकाकार ध्रुव

ज्ञायक स्वभावरूप निज आत्मा ही उपादेय है। निश्चय व्यवहार दोनों को उपादेय मानना यह भी भ्रम है। मिथ्याबुद्धि है। निश्चय उपादेय ही है। व्यवहार हेय ही है।

(१) जीवत्व अधिकार

तिक्काले चदुपाणा, इंदियबलमाउआणपाणो य।
ववहारा सो जीवो, णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

त्रिकाले चतुःप्राणाः इन्द्रियं बलं आयुः आनप्राणः च।
व्यवहारात् सः जीवः निश्चयनयतः तु चेतना यस्य ॥३॥

सूत्रार्थ—व्यवहार से तीन-काल में जिसके चार-प्राण-इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास हैं वह जीव है। निश्चय से तो जिसके चेतना (प्राण) है वह जीव है।

## प्रश्नोत्तर

प्रश्न १९—तीसरे सूत्र मे क्या वर्णन है ?

उत्तर—जीवत्व अधिकार का वर्णन है।

प्रश्न २०—जीवत्व अधिकार का वर्णन करो ?

उत्तर—जिसके संयोगी दृष्टि से चार अथवा दस प्राण (का संयोग) है; वह जीव है और निश्चय में जो अखण्ड शुद्ध चेतना प्राण है। चेतन द्रव्य है। वह जीव है।

प्रश्न २१—यहा व्यवहार निश्चय किस को कहा है ?

उत्तर—यहाँ पर-द्रव्य को व्यवहार और स्वद्रव्य को निश्चय कहा है।

प्रश्न २२—व्यवहार कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर—तीन प्रकार का (१) संयोग रूप व्यवहार (२) पर्याय-रूप व्यवहार (३) भेद रूप व्यवहार।

प्रश्न २३—संयोग रूप व्यवहार किसको कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य-कर्म, नो-कर्म को आत्मा कहना संयोग रूप व्यवहार है।

प्रश्न २४—पर्याय रूप व्यवहार किस को कहते है ?

उत्तर—आत्मा के कर्मसापेक्ष परिणमन को आत्मा कहना पर्याय रूप व्यवहार है अर्थात् औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन चार भावों को आत्मा कहना पर्याय रूप व्यवहार है।

प्रश्न २५—भेद रूप व्यवहार किस को कहते हैं ?

उत्तर—शुद्ध अखण्ड सत् को समझने समझाने के लिये भेद करना, भेदरूप व्यवहार है जैसे जिस में ज्ञान दर्शन चारित्र आदि पाया जाये वह आत्मा है अथवा जिसमें असंख्यात प्रदेश पाये जावें, वह आत्मा है।

प्रश्न २६—यहां कौनसा व्यवहार है ?

उत्तर—यहाँ संयोग रूप व्यवहार है।

प्रश्न २७—पर्याय रूप व्यवहार कहां आया है ?

उत्तर—आगे छठे आदि सूत्रों में आया है।

प्रश्न २८—भेद रूप व्यवहार का वर्णन कहा आया है ?

उत्तर—श्री समयसार जी गा. नं० ७ में आया है।

प्रश्न २९—जीवत्व अधिकार और जीव मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—जीवत्व तो जीव का एक अधिकार है और जीव वह है कि जिसमें ९ अधिकार पाये जाते है।

प्रश्न ३०—इस जीवत्व अधिकार के जानने का क्या फल है ?

उत्तर—अनादि काल से जीव ने प्राणों के संयोग को अर्थात् शरीर को ही आत्मा मान रक्खा है। अब उसकी श्रद्धा छोड़कर चेतन द्रव्य में उपादेय बुद्धि करनी है और चार प्राणों में जीवपने की बुद्धि को छोड़ना है। यही इस का प्रयोजन है।

प्रश्न ३१—इस सूत्र का निर्माण किस आगम आधार से हुवा है ?

उत्तर—इसका निर्माण श्रीपंचास्तिकाय गा. ३०, ३१, ३२ पर से हुवा है।

प्रश्न ३२—बहिरात्मा किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिस की बहिस्तत्त्व में अन्तस्तत्त्वपने की बुद्धि हो वह बहिरात्मा है जैसे ये प्राण ही मै हूं ऐसी श्रद्धा वाला जीव बहिरात्मा है।

प्रश्न ३३—परमात्मा किस को कहते हैं ?

उत्तर—जिस ने अन्तस्तत्त्व को साक्षात् प्राप्त कर लिया है ऐसे अरहन्तों और सिद्धों को परमात्मा कहते है।

प्रश्न ३४—अन्तरात्मा किस को कहते हैं ?

उत्तर—जिस ने अन्तस्तत्त्व का आश्रय कर लिया हो और बहिस्तत्त्व का ज्ञाता हो वह अन्तरात्मा है। चौथे से बारहवें गुणस्थान के जीवों को अन्तरात्मा कहते है।

प्रश्न ३५—इस सूत्र मे अन्तस्तत्त्व किसको कहा है ?

उत्तर—चेतना प्राण को अर्थात् अखण्ड चेतन द्रव्य को—ज्ञायक भाव को—स्वतः सिद्ध तत्त्व को अन्तस्तत्त्व कहा है।

प्रश्न ३६—इस सूत्र मे बहिस्तत्त्व किस को कहा है ?

उत्तर—चार या दस पुद्गल प्राणों को बहिस्तत्त्व कहा है।

प्रश्न ३७—अन्तस्तत्त्व, बहिस्तत्त्व के जानने का क्या लाभ है ?

उत्तर—अन्तस्तत्त्व उपादेय है और बहिस्तत्त्व ज्ञेय है। अन्तस्तत्त्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रकट होकर जीव मोक्ष-मार्गी हो जाता है। यही भेदविज्ञान का फल है। और उस अन्तस्तत्त्व की स्थिरता से तो साक्षात् अन्तस्तत्त्व रूप ही हो जाता है (सिद्ध हो जाता है)।

प्रश्न ३८—तीन काल मे तो सिद्ध भी आ गये पर सिद्ध में तो चार प्राण नही होते फिर सूत्र के अर्थ का क्या होगा ?

उत्तर—सिद्ध में व्यवहार, निश्चय नय नहीं लगते। जहाँ दोनों नयों का प्रयोग हो वहाँ समझ लो कि वह संसारी जीव की बात है। इस सूत्र में संसारी जीव का सोपाधि और निरुपाधि स्वरूप बताया है। जब तक जीव की संसारी संज्ञा है तब तक चार प्राणों का संयोग रहता ही है। अतः सूत्र निर्दोष है। चार प्राणों वाला जीव है यह उसका सोपाधि (व्यवहार) स्वरूप है और उसी समय स्वभाव दृष्टि से चार प्राणों से रहित शुद्ध चेतन है यह उसका निरुपाधि (निश्चय) स्वरूप है। सोपाधि स्वरूप हेय है, निरुपाधि स्वरूप उपादेय है।

प्रश्न ३९—व्यवहार का क्या अर्थ है ?

उत्तर—व्यवहार कहो, बहिस्तत्त्व कहो, हेय कहो, ज्ञेय कहो। एक ही बात है। यह प्रतिषेध्य है (निश्चय द्वारा निषेध करने योग्य है)।

प्रश्न ४०—निश्चय का क्या अर्थ है ?

उत्तर—निश्चय कहो, अन्तस्तत्त्व कहो, उपादेय कहो, भूतार्थ कहो, मूल तत्त्व कहो, एक ही बात है। यह प्रतिषेधक है (व्यवहार का निषेध करके शुद्ध तत्त्व की स्थापना करती है)।

प्रश्न ४१—सूत्र में चेतना शब्द द्रव्य का वाचक है, गुण का वाचक है या पर्याय का वाचक है ?

उत्तर—द्रव्य का वाचक है क्योंकि पर्याय और गुणभेद निश्चय का विषय नहीं किन्तु व्यवहार का विषय है।

प्रश्न ४२—जीव का स्वाभाविक प्रमाण क्या है ?

उत्तर—अनन्त सामान्य और विशेष सब गुण और उनका अगुरुलघुगुण के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदों की हानिवृद्धि द्वारा स्वाभाविकपरिणमन जो कारण शुद्ध पर्याय है तथा असंख्यात प्रदेश यह जीव का स्वाभाविक प्रमाण है जो सब जीवों में त्रिकाल एकरूप रहता है। [illegible]

का विषय है। उपादेय है। सम्यक्त्व का आश्रय है (श्री पंचास्तिकाय गा. ३१)।

प्रश्न ४३—संसारी जीव किसे कहते है ?

उत्तर—उपर्युक्त प्रमाण वाले जो जीव मिथ्यादर्शन कषाय और योग सहित होते हैं उन्हें संसारी जीव कहते हैं (श्रीपंचास्तिकाय गा. ३२)।

प्रश्न ४४—सिद्ध जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—उपर्युक्त प्रमाण वाले जो जीव मिथ्यादर्शन कषाय और योग रहित होते हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं (श्री पंचास्तिकाय गा. ३२)।

## (२) उपयोग अधिकार

उवओगो दुवियप्पो, दसणं णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं ॥४॥
णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदिओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जयकेवलमवि, पच्चक्ख-परोक्खभेयं च ॥५॥
अट्ठचदुणाणदंसण, सामण्ण जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥

उपयोगः द्विविकल्पः दर्शन ज्ञानं च दर्शनं चतुर्धा।
चक्षुः अचक्षुः अवधिः दर्शनं अथ केवलं ज्ञेयम् ॥४॥
ज्ञान अष्टविकल्पं मतिश्रुतावधयः अज्ञानज्ञानानि।
मनःपर्ययः केवलं अपि प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च ॥५॥
अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने सामान्यं जीवलक्षणं भणितम्।
व्यवहारात् शुद्धनयात् शुद्धं पुनः दर्शनं ज्ञानम् ॥६॥

सूत्रार्थ ४—उपयोग दो प्रकार है। दर्शनोपयोग, ज्ञानोपयोग। और दर्शनोपयोग चक्षुर्दर्शनोपयोग, अचक्षुर्दर्शनोपयोग, अवधिदर्शनोपयोग और केवलदर्शनोपयोग इस तरह चार प्रकार जानना चाहिये।

सूत्रार्थ ५—ज्ञानोपयोग आठ प्रकार है। मतिज्ञानोपयोग, श्रुत-

ज्ञानोपयोग, अवधिज्ञानोपयोग, तीन अज्ञान रूप ज्ञान-कुमतिज्ञानोपयोग, कुश्रुतज्ञानोपयोग, विभंगज्ञानोपयोग और मनःपर्ययज्ञानोपयोग और केवलज्ञानोपयोग और यह प्रत्यक्षज्ञानोपयोग और परोक्षज्ञानोपयोग दो भेद रूप है (अर्थात् केवलज्ञान प्रत्यक्षज्ञानोपयोग है और शेष सब परोक्षज्ञानोपयोग है)।

सूत्रार्थ ६—व्यवहार-नय से (पर्याय दृष्टि से) आठ ज्ञान (पर्यायें) और चार दर्शन (पर्यायें) सामान्य रूप से (साधारणतया) जीव का लक्षण कहा गया है, और निश्चय नय से (द्रव्य दृष्टि से, अभेद दृष्टि से) शुद्ध ज्ञान (गुण) और शुद्ध दर्शन (गुण) जीव का लक्षण है।

## लक्षण संग्रह

(श्री पंचास्तिकाय से)

उपयोग—आत्मा का चैतन्य अनुविधायी (अर्थात् चैतन्य को अनुसरण करने वाला) परिणाम उपयोग है। उपयोग जीव से अभिन्न ही है।

ज्ञानोपयोग—विशेष को ग्रहण करने वाला ज्ञानोपयोग है अर्थात् विशेष जिसमें प्रतिभासता है वह ज्ञानोपयोग है।

दर्शनोपयोग—सामान्य को ग्रहण करने वाला दर्शनोपयोग है अर्थात् सामान्य जिसमें प्रतिभासता है वह दर्शनोपयोग है।

प्रत्यक्षज्ञानोपयोग—समस्त ज्ञानावरण के अत्यन्त क्षय होने पर आत्मा अकेला ही मूर्त्त अमूर्त्त द्रव्य को सकलपने विशेषतः (साकार रूप से) जानता है वह स्वाभाविक केवलज्ञान प्रत्यक्षज्ञानोपयोग है।

परोक्षज्ञानोपयोग—ज्ञानावरण के क्षयोपशम से जो विकलपने विशेषतः पदार्थों को जानता है वह परोक्ष ज्ञानोपयोग है (श्री पंचाध्यायी सूत्र ७०२, श्री प्रवचनसार गा. ५८। अध्यात्म दृष्टि से यही कथन उत्तम है)।

शुद्ध ज्ञान—ज्ञान गुण को शुद्ध ज्ञान कहते हैं।

शुद्ध दर्शन—दर्शन गुण को शुद्ध दर्शन कहते हैं।

आत्मा वास्तव में अनन्त, सर्व आत्म प्रदेशों में व्यापक, विशुद्ध ज्ञानसामान्यस्वरूप है। वह आत्मा वास्तव में अनादि ज्ञानावरण कर्म से आच्छादित प्रदेशों वाला है।

(१) अभिनिबोधिक ज्ञान—मतिज्ञान के आवरण के क्षयोपशम से और इन्द्रियमन के अवलंबन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य को विकलपने (अपूर्णपने, अंशरूप से) विशेषतः (साकाररूप से) जो जानता है वह आभिनिबोधिक ज्ञान है।

(२) श्रुतज्ञान—श्रुतज्ञान के आवरण के क्षयोपशम से और मन के अवलम्वन से मूर्त-अमूर्त द्रव्य को विकलपने विशेषतः जो जानता है वह श्रुतज्ञान है।

(३) अवधिज्ञान—अवधिज्ञान के आवरण के क्षयोपशम से जो मूर्त द्रव्य को विकलपने विशेषतः जानता है वह अवधिज्ञान है।

(४) मनःपर्यय ज्ञान—मनःपर्यय ज्ञान क आवरण के क्षयोपशम से ही जो परमनोगत (पर के मन के साथ सम्बन्ध वाले) मूर्त द्रव्य को विकलपने विशेषतः जानता है वह मनःपर्यय ज्ञान है।

(५) केवल ज्ञान—समस्त ज्ञानावरण के अत्यन्त क्षय होने पर, आत्मा अकेला ही, मूर्त-अमूर्त द्रव्य को सकलपने विशेषतः जानता है वह स्वाभाविक केवलज्ञान है।

(६) कुमतिज्ञान—मिथ्यादर्शन के उदय के साथवाला आभिनिबोधिक ज्ञान ही कुमतिज्ञान है।

(७) कुश्रुतज्ञान—मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का श्रुतज्ञान ही कुश्रुतज्ञान है।

(८) विभगज्ञान—मिथ्यादर्शन के उदय के साथ का अवधिज्ञान ही विभंगज्ञान है।

आत्मा वास्तव में अनन्त, सर्व आत्म प्रदेशों में व्यापक, विशुद्ध दर्शनसामान्यस्वरूप है। वह आत्मा वास्तव में अनादि दर्शनावरण कर्म से आच्छादित प्रदेश वाला हो रहा है।

(१) चक्षुदर्शन—चक्षुदर्शन के आवरण के क्षयोपशम से और चक्षु-इन्द्रिय के अवलम्बन से मूर्त द्रव्य को विकलपने सामान्यतः (निराकारपने) जो जानता है वह चक्षुर्दर्शन है।

(२) अचक्षुदर्शन—अचक्षुदर्शन के आवरण के क्षयोपशम से और चक्षु बिना बाकी की चार इन्द्रियों तथा मन के अवलम्बन से मूर्त, अमूर्त द्रव्य को विकलपने सामान्यतः जो जानता है वह अचक्षुर्दर्शन है।

(३) अवधिदर्शन—अवधिदर्शन के आवरण के क्षयोपशम से ही मूर्त द्रव्य को विकलपने सामान्यतः जो जानता है वह अविधदर्शन है।

(४) केवलदर्शन—समस्त आवरण के अत्यन्त क्षय होने पर, आत्मा अकेला ही, मूर्त-अमूर्त द्रव्य को सकलपने सामान्यतः जो जानता है वह स्वाभाविक केवलदर्शन है।

## प्रश्नोत्तर

प्रश्न ४५—सूत्र ४, ५, ६ में क्या वर्णन है?

उत्तर—उपयोग अधिकार का वर्णन है।

प्रश्न ४६—उपयोग क्या है?

उत्तर—उपयोग जीव का लक्षण है।

प्रश्न ४७—उपयोग कितने प्रकार का है?

उत्तर—उपयोग दो प्रकार का है-(१) दर्शनोपयोग (२) ज्ञानोपयोग।

प्रश्न ४८—दर्शनोपयोग की कितनी पर्यायें हैं?

उत्तर—चार: (१) चक्षुर्दर्शनोपयोग (२) अचक्षुर्दर्शनोपयोग (३) अवधिदर्शनोपयोग (४) केवल दर्शनोपयोग।

प्रश्न ४९—ज्ञानोपयोग की कितनी पर्यायें है ?

उत्तर—आठ। मतिज्ञानोपयोग, श्रुतज्ञानोपयोग, अवधिज्ञानोपयोग, कुमतिज्ञानोपयोग, कुश्रुतज्ञानोपयोग, विभंगज्ञानोपयोग, मनःपर्यय-ज्ञानोपयोग और केवलज्ञानोपयोग।

प्रश्न ५०—दूसरी तरह ज्ञानोपयोग की कितनी पर्यायें हैं ?

उत्तर—दो: (१) प्रत्यक्षज्ञानोपयोग (२) परोक्षज्ञानोपयोग।

प्रश्न ५१—उपयोग अधिकार का वर्णन करो ?

उत्तर—ज्ञानोपयोग की आठ पर्यायें और दर्शनोपयोग की चार पर्यायें पर्यायार्थिक नय से सब जीवों का लक्षण कहा गया है और द्रव्यार्थिक नय से तो ज्ञान-गुण और दर्शन-गुण; जीव मात्र का लक्षण है।

प्रश्न ५२—यहां व्यवहार निश्चय किस को कहा है ?

उत्तर – यहां पर्याय को व्यवहार और गुण को निश्चय कहा है।

प्रश्न ५३—दो गुणों के कहने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—आत्म द्रव्य सामान्यविशेषात्मक है। दर्शन; सामान्य का द्योतक है। ज्ञान; विशेष का द्योतक है। वास्तव में दो गुणों के कहने से सामान्यविशेषात्मक अखण्ड-शुद्ध-आत्म-द्रव्य को ही, निश्चय कहा है (श्रीसमयसार जी गा. २९८, २९९)।

प्रश्न ५४—सूत्र मे सामान्य शब्द का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—निगोद से सिद्ध तक सब जीवों में कोई न कोई ज्ञानोपयोग की पर्याय और कोई न कोई दर्शनोपयोग की पर्याय अवश्य पायी जाती है। अतः वह व्यवहार का लक्षण भी साधारणतया सब जीवों में पाया ही जाता है।

प्रश्न ५५—व्यवहार का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—व्यवहार प्रतिपादक है। व्यवहार के द्वारा जीव पकड़ाया जाता है। सूत्र नं० ३ में संयोग रूप व्यवहार से जीव को पकड़ाकर आये

हैं और यहाँ तथा आगे पर्यायरूप व्यवहार से जीव को पकड़ाया है और श्रीसमयसार जी की गाथा नं० ७ में भेदरूप व्यवहार से जीव पकड़ाया है।

प्रश्न ५६—निश्चय का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—निश्चय प्रतिपाद्य है। व्यवहार के द्वारा पकड़ाया गया त्रिकाली ज्ञायक, शुद्ध, एक, सत्, अहेतुक, अखण्ड, आत्म-द्रव्य; निश्चय का विषय है। जो उपादेय है।

प्रश्न ५७—सूत्र में शुद्ध शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—नैमित्तिक वस्तु को अशुद्ध कहते हैं। स्वतः सिद्ध वस्तु को शुद्ध कहते हैं। उपयोग की १२ पर्यायें द्रव्य-कर्म से सिद्ध होने के कारण परतः सिद्ध हैं; जबकि गुण; स्वतः सिद्ध है। अध्यात्म के इस नियम से यहाँ शुद्ध शब्द से त्रिकाली ज्ञान-गुण और दर्शन-गुण पकड़ा गया है।

प्रश्न ५८—सूत्र में 'सुद्धणया' शब्द का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—शुद्ध-नय, द्रव्यार्थिक-नय, भूतार्थ-नय, परमार्थ-नय ये शब्द निश्चय-नय के नामान्तर हैं जो त्रिकाली-शुद्ध-आत्मा के द्योतक हैं।

प्रश्न ५९—इस उपयोग अधिकार के जानने का क्या फल है ?

उत्तर—अनादि-काल से यह जीव, ज्ञान, दर्शन की नैमित्तिक पर्यायों को ही जीव मान रहा है। दर्शनज्ञानमय जीव द्रव्य को नहीं जानता। अतः पर्याय दृष्टि छुड़ा कर द्रव्यदृष्टि कराई है। अर्थात् द्रव्य का आश्रय करना है और पर्याय का ज्ञाता बनना है।

प्रश्न ६०—यहां अन्तस्तत्व किस को कहा है ?

उत्तर—यहाँ अखण्ड शुद्ध ज्ञान और अखण्ड शुद्ध दर्शन को अन्तस्तत्व कहा है जो उपादेय है।

प्रश्न ६१—यहां बहिस्तत्व किस को कहा है ?

उत्तर—यहाँ ज्ञान गुण की आठ पर्यायों को और दर्शन गुण की चार पर्यायों को बहिस्तत्व कहा है जो ज्ञेय तत्व है (श्री समयसार जी गाथा ३२०)।

प्रश्न ६२—इसके जानने का क्या फल है ?

उत्तर—जो इन १२ पर्यायों को ही जीव मानता है और अन्तस्तत्व को नहीं जानता वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है और जो शुद्ध ज्ञान दर्शन को आश्रय करता है वह सम्यदृष्टि है। ऐसे जीव को ही औदयिक भाव नष्ट होकर क्षायिक भाव रूप मोक्ष दशा प्रकट होती है।

प्रश्न ६३—इन सूत्रों का निर्माण किस आगम आधार से हुवा है ?

उत्तर—इनका निर्माण श्री पंचास्तिकाय गा. ४० से ५२ पर से हुवा है।

## (३) अमूर्त्त-अधिकार

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥७॥

वर्णाः रसाः पंच गंधौ द्वौ स्पर्शाः अष्टौ निश्चयात् जीवे।
नो संति अमूर्तिः ततः व्यवहारात् मूर्तिः बंधतः ॥७॥

सूत्रार्थ—५ वर्ण, ५ रस, २ गंध, ८ स्पर्श निश्चय से जीव में नही है; इसलिये अमूर्त है। व्यवहार से कर्मबंध सहित होने से मूर्तिक है।

## प्रश्नोत्तर

प्रश्न ६४—सूत्र नं० ७ मे क्या वर्णन है ?

उत्तर—इस सूत्र में अमूर्तत्व अधिकार का वर्णन है।

प्रश्न ६५—अमूर्त्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार गुण तथा आठ स्पर्श, पाँच रस, दो गंध और ५ वर्ण की ये २० पर्यायें पाई जायें, उसे मूर्त्त

कहते है। और जिस में यह सर्वथा न पाई जायें उसे अमूर्त कहते हैं।

प्रश्न ६६—अमूर्त्त अधिकार का वर्णन करो ?

उत्तर—क्योंकि आत्मा में निश्चय से मूर्त्त द्रव्य के ४ गुण और २० पर्यायें नहीं हैं इसलिये अमूर्त है; किन्तु संयोग दृष्टि से मूर्त कर्मबंध सहित होने के कारण मूर्त्तिक भी कहा जाता है।

प्रश्न ६७—यहां व्यवहार, निश्चय किसको कहा है ?

उत्तर—यहाँ पर-द्रव्य को; व्यवहार और स्व-द्रव्य को; निश्चय कहा है।

प्रश्न ६८—यहां कौनसी व्यवहार का वर्णन है ?

उत्तर—यहाँ संयोग को दिखाने वाली व्यवहार का वर्णन है।

प्रश्न ६९—इस अमूर्त्त अधिकार के जानने का क्या फल है ?

उत्तर—अपना निज अमूर्त्त स्वभाव शुद्ध जीव द्रव्य उपादेय है और मूर्त्तपना पर है। ज्ञेय है। यही इस का फल है।

प्रश्न ७०—यहां अन्तस्तत्त्व किस को कहा है ?

उत्तर—यहाँ अमूर्त्तिक स्वभाव को अन्तस्तत्त्व कहा है।

प्रश्न ७१—अमूर्त्तिक स्वभाव से क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—त्रिकाली ज्ञायक आत्मा को यहाँ अमूर्त्तिक स्वभाव कहा है।

प्रश्न ७२—यहां बहिस्तत्त्व किस को कहा है ?

उत्तर—यहाँ मूर्त्तिक संयोग को बहिस्तत्त्व कहा है।

प्रश्न ७३—इस के जानने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—अमूर्त्तिक स्वभाव उपादेय है, आश्रय करने योग्य है। और मूर्त्तिक-पना परद्रव्य है-ज्ञेय है।

प्रश्न ७४—इस सूत्र का निर्माण किन आगम आधार से हुवा है।

उत्तर—इस का निर्माण श्रीपंचास्तिकाय गा. ३५, ३६, ३७ पर से हुवा है।

## (४) कर्ता अधिकार

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहादो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥८॥

पुद्गलकर्मादीनां कर्त्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः।
चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम् ॥८॥

सूत्रार्थ—आत्मा व्यवहार से पुद्गल कर्म आदि का कर्ता है, निश्चय से चेतन कर्मों का कर्ता है और शुद्धनय से शुद्ध भावों का कर्ता है।

विशेष सूत्रार्थ—(१) आत्मा व्यवहार से (अर्थात् निमित्त नैमित्तिक संबंध की दृष्टि से) (अज्ञान दशा तक) द्रव्यकर्म आदि (नोकर्म) का कर्ता है।

(२) आत्मा निश्चय से (अशुद्ध निश्चय से) (अज्ञान दशा तक) चेतनकर्मों का (राग द्वेषमोह का) कर्ता है।

(३) आत्मा शुद्ध नय से (निश्चय नय से) (ज्ञान दशा में) शुद्ध भावों का (सम्यदर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप स्वभाव पर्यायों का) कर्ता है।

## प्रश्नोत्तर

प्रश्न ७५—आठवें सूत्र में क्या वर्णन है ?

उत्तर—इसमें कर्तृत्व अधिकार का वर्णन है।

प्रश्न ७६—कर्ता अधिकार द्रव्य में होता है या गुण में होता है या पर्याय में होता है ?

उत्तर—कर्ता अधिकार द्रव्य, गुण में नहीं होता क्योंकि वे अकृत्रिम हैं। यह तो नैमित्तिक पर्यायों में होता है।

प्रश्न ७७—नैमित्तिक पर्यायें किनको कहते हैं ?

उत्तर—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भावों को नैमित्तिक पर्यायें कहते हैं। इनके साथ द्रव्य का कर्ता कर्म है।

प्रश्न ७८—यहां व्यवहार, निश्चय किस को कहा है ?

उत्तर—यहाँ पर द्रव्य की पर्याय को व्यवहार तथा स्व द्रव्य की पर्याय को निश्चय कहा हैं। अज्ञानी में वह स्व पर्याय अज्ञान रूप है और ज्ञानी में ज्ञानरूप है।

प्रश्न ७९—निश्चय तो द्रव्य को कहते है यहां पर्याय को कैसे निश्चय कह दिया है ?

उत्तर—यहाँ द्रव्यदृष्टि की बात नहीं है। यहाँ तो द्रव्य जिस समय जिस भाव में वर्तता है उस समय उस भाव से तन्मय है और उसी भाव का निश्चय से कर्त्ता है। जब आपको ऊपर नियम बता दिया है कि कर्त्ता, कर्म पर्याय में ही होता है फिर इस प्रश्न का अवकाश ही नहीं रहता।

प्रश्न ८०—कर्त्ता-अधिकार को बोलने की क्या रीति है ?

उत्तर—कर्त्ता-अधिकार के नियम अज्ञान दशा के भिन्न हैं और ज्ञान दशा के भिन्न हैं। अतः यह अधिकार भिन्न २ रूप से बोला जाता है।

## अज्ञानी का कर्त्ता, कर्म

प्रश्न ८१—आत्मा अज्ञान दशा में किस का कर्त्ता है ?

उत्तर—आत्मा, अज्ञान दशा में व्यवहार-नय से पुद्गल कर्मों का कर्त्ता है और आत्मा, अज्ञान दशा में निश्चय नय से रागादि भावों का कर्त्ता है।

प्रश्न ८२—क्या आत्मा पुद्गल कर्मों को कर सकता है ?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न ८३—क्यों नहीं ?

उत्तर—व्याप्य-व्यापक भाव तदात्मक वस्तु में होता है; अतदात्मक में नहीं, और व्याप्य-व्यापक भाव के बिना कर्त्ता-कर्म की स्थिति नहीं हुवा करती।

प्रश्न ८४—तो फिर उसे पुद्गल कर्मों का कर्त्ता क्यों कहा है ?

उत्तर—अज्ञानी का और पुद्गल कर्मों के बंध का निमित्त-नैमित्तिक संबंध है इसलिये आरोप से अज्ञानी को उन पुद्गल कर्मों का कर्ता कह दिया है।

प्रश्न ८५—यहां व्यवहार नय का क्या अर्थ है ?

उत्तर—प्रमाण सारी वस्तु को जानता है और नय उसी वस्तु के एक अंश को जानता है। अतः नय एक ही द्रव्य के चतुष्टय में लगता है दूसरे द्रव्य पर नहीं। दूसरे द्रव्य पर लगाने से नयाभास बन जाता है। जहाँ कहीं भी दो द्रव्यों पर आचार्यों ने व्यवहार नय लगाया हो उसका अर्थ निमित्त नैमित्तिक मात्रका दिखलाना है और कुछ नहीं। यह गुरु मन्त्र है इसको न भूलना। क्योंकि अज्ञानी का और द्रव्यकर्मों के बंध का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है अतः इस निमित्त दृष्टि को ही यहां व्यवहार दृष्टि कहकर उसको द्रव्यकर्मों का कर्ता कहा जो सिद्धान्तानुसार ठीक अर्थ है।

प्रश्न—तो क्या अज्ञानी आत्मा का पुद्गल कर्मों से निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है ?

उत्तर—वास्तव में तो अज्ञानी के राग का और पुद्गल कर्मों का मिमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। यदि आत्मा का हो तो फिर आत्मा का स्वभाव हो जायेगा-त्रिकाल रहेगा और सिद्ध भी वन्ध करने लगेगा। अतः यदि अन्तरदृष्टि से पूछते हो तो अज्ञानी के उस राग का और कर्मों का ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्व है, आत्मा का नहीं।

प्रश्न ८७—तो सूत्रकार आत्मा को क्यों कहते हैं ?

उत्तर—क्योंकि अज्ञानी का आत्मा राग से तन्मय है। राग रूप ही पूर्णतया अपने को वेदन करता है। भेद विज्ञान के अभाव के कारण सामान्य आत्मा और राग को जुदा नहीं किया है। अतः अज्ञान दशा

तक राग का कर्ता न कहकर आत्मा को ही कर्ता कहा जाता है।

प्रश्न ८८—सूत्र में आत्मा को राग का कर्ता निश्चय से क्यों कहा है?

उत्तर—व्यवहार निश्चय परस्पर सापेक्ष शब्द हैं। जब द्रव्य कर्म का कर्ता व्यवहार से कहा तो राग का कर्ता निश्चय से कहना ही पड़ा एक बात तो यह है। दूसरी बात यह है कि क्योंकि अज्ञानी राग से तन्मय होकर वर्तता है अतः वह निश्चय से राग का कर्ता ही है। तीसरे यहां निश्चय का अर्थ अशुद्धनिश्चय है।

प्रश्न ८९—'अज्ञान दशा का कर्ता कर्म' जानने का क्या फल है?

उत्तर—अनादि-काल से जीव अपने मूल स्वभाव को भूलकर राग का कर्ता बना हुआ है; अब उसको छोड़ना है।

## ज्ञानी का कर्त्ता कर्म

प्रश्न ९०—आत्मा; ज्ञान-दशा में किसका कर्त्ता है?

उत्तर—आत्मा; ज्ञान-दशा में शुद्ध-नयसे अपने शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

प्रश्न ९१—शुद्ध-भाव किसको कहते हैं?

उत्तर—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूप स्वभाव पर्यायों को शुद्ध भाव कहते हैं।

प्रश्न ९२—शुद्ध नय किसे कहते हैं?

उत्तर—शुद्धनय निश्चयनय को ही कहते हैं पर क्योंकि निश्चय शब्द सूत्रकार ने राग के लिये प्रयोग कर दिया था अतः उन्हें उससे भेद करने के लिये यहां शुद्ध शब्द डालना पड़ा है।

प्रश्न ९३—आत्मा से आपने ज्ञानी आत्मा कैसे अर्थ कर लिया।

उत्तर—यहां आत्मा को शुद्ध भाव का कर्ता कह रहे हैं और शुद्ध भाव ज्ञानियों के ही होता हैं अतः आपको समझाने के लिये हमने आत्मा न कहकर ज्ञानी आत्मा कह दिया।

प्रश्न ९४—'ज्ञान दशा में' यह शब्द सूत्र में तो नहीं है?

उत्तर—इन शब्दों की कोई आवश्यकता ही न थी क्योंकि शुद्धभाव का

कर्त्ता कह रहे हैं और शुद्ध भाव ज्ञान दशा में ही होता है। हमने आपको विशेष स्पष्ट करने के लिये डाल दिया है।

प्रश्न ९५—ज्ञानी राग का कर्त्ता है या नहीं?

उत्तर—श्रद्धा की अपेक्षा से तो ज्ञानी राग का कर्त्ता बिलकुल नहीं है। चारित्र की अपेक्षा से जितना राग है-उसका कर्त्ता अशुद्ध निश्चय नय से है।

प्रश्न ९६—श्रद्धा की अपेक्षा ज्ञानी उस राग का कर्त्ता क्यों नहीं?

उत्तर--क्योंकि ज्ञानी ने स्वभाव का और राग का भेदविज्ञान कर लिया है। शुद्ध आत्मा को ही वह अपना समझता है राग को नहीं।

प्रश्न ९७--ज्ञानी द्रव्यकर्मों का कर्त्ता है या नहीं?

उत्तर– ज्ञानी को दृष्टि में निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पर से सर्वथा छूट गया है किन्तु चारित्र में जितना अंश राग रहा-उतना निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध तो द्रव्यकर्मों से जरूर है ही। अतः उतने अंश में उसे भी असद्भूत व्यवहार नय से द्रव्यकर्मों का कर्त्ता कह सकते हैं। कोई हानि नहीं।

प्रश्न ९८—ज्ञान की अपेक्षा ज्ञानी किसका कर्त्ता है?

उत्तर—ज्ञान की अपेक्षा ज्ञानी किसी का कर्त्ता नहीं। ज्ञान की अपेक्षा तो राग, द्वेष, सुख, दुःख, नोकर्म, द्रव्य कर्म, कर्म फल तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप शुद्धभाव सबका ज्ञाता ही है।

नोट—प्रश्नोत्तर ९९ से १०४ तक Cancell कर दिये है।

प्रश्न १०५—परद्रव्य का निश्चय से कर्त्ता कौन है? ज्ञानी या अज्ञानी या दोनों?

उत्तर--ज्ञानी, अज्ञानी कोई भी नहीं। श्री समयसार फलश में कहा है।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं, ज्ञानादन्यत् करोति किं।
परभावस्य कर्त्तात्मा, मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥६२॥

अर्थ—आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ज्ञान ही है। वह ज्ञान के अतिरिक्त अन्य क्या करे? आत्मा पर-भाव का कर्त्ता है; ऐसा मानना या कहना सो व्यवहारी जीवों का मोह है, अज्ञान है।

प्रश्न १०६—पर द्रव्यकर्म किसी का किया हुआ ही तो होगा। आखिर उस पुद्गल कर्म को कौन परिणमाता है?

उत्तर—भाई! जीववत् वह भी स्वतन्त्र द्रव्य है। उसमें भी उसके गुण पर्यायें हैं। द्रव्यत्व गुण है। वह उस द्रव्यत्व गुण के कारण स्वयं अपने स्वतः सिद्ध परिणमन स्वभाव के कारण बदला करता है। उसका बदलना ही उसकी पर्याय की उत्पत्ति है और वही उसका कर्त्ता है। उसका कर्त्ता कर्म उसी में है। वास्तव में ऐसा ही है। इसमें सन्देह की बात नहीं है। आत्मा या ईश्वरादि कोई पर का कर्त्ता नहीं है। (श्री पचास्तिकाय सूत्र ६२ टीका)।

प्रश्न १०७—इस सूत्र का निर्माण किस आगम आधार से हुआ है?

उत्तर—इसका निर्माण श्री पंचास्तिकाय सूत्र ५३ से ६२ पर से हुआ है।

(५) भोक्ता अधिकार

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फल पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणायदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥६॥

व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गलकर्मफलं प्रभुंक्ते।
आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः ॥६॥

सूत्रार्थ—आत्मा व्यवहार से पुद्गल कर्मों के फल सुख दुःख को भोगता है और निश्चय नय से वास्तव में अपने (आत्मा के) चेतन भाव को भोगता है।

भावार्थ—इस सूत्र में आचार्य महाराज ने कर्तृत्व अधिकारवत् तीन नय न देकर दो ही नय दिये हैं। अतः इस सूत्र का अर्थ तीन प्रकार हो सकता है और सब तरह निर्दोष है।

पहली पद्धति—इसके अर्थ की यह है कि पर वस्तु को तो आत्मा भोग नहीं सकता। अतः यह दोनों नय जीव भाव से सम्बन्धित रक्खे जावें। फिर तो सीधा अर्थ यह है कि ऊपर की पंक्ति साता असाता रूप सुख दुःख भाव की है और नीचे की पंक्ति अतीन्द्रिय सुख की है।

फिर यह अर्थ हुआ—प्रथम पंक्ति—आत्मा व्यवहार से (अशुद्ध निश्चय से) पुद्गल कर्मों के फल सुख दुःख (साता असाता रूप) भावों का भोगता है। दूसरी पंक्ति—आत्मा (ज्ञानी आत्मा) निश्चय नय से वास्तव में अपने चेतन भावों का (अतीन्द्रिय सुख का) भोगता है।

दूसरी पद्धति—अर्थ करने की यह है कि ऊपर की पंक्ति से दो अर्थ निकाले जावें कि आत्मा संयोगी व्यवहार से शुभाशुभ कर्मों से प्राप्त इष्ट अनिष्ट विषयों का भोक्ता है और असंयोगी व्यवहार से (अशुद्ध निश्चय को अध्यात्म में व्यवहार भी कहते हैं) सुख दुःख भावों का भोगता है। इस प्रकार दोनों अर्थ तो ऊपर की पंक्ति से निकाले जावें और नीचे की पंक्ति का अर्थ वही रहे जो ऊपर करके आये है कि आत्मा निश्चय से अपने चेतन भावों का भोगता है। यह अर्थ कर्तृत्व अधिकार-वत् हो जायेगा।

तीसरी पद्धति—श्रीपंचास्तिकाय के सूत्र नं० २७ में श्रीअमृत-चन्द्र जी संस्कृत टीकाकार ने जो अर्थ किया है उसके आधार से तो यह अर्थ होता है कि ऊपर की पंक्ति तो संयोगी व्यवहार अर्थात् निमित्त नैमित्तिक सबन्ध की है और नीचे की पंक्ति आत्मा के भावों की है। आत्मा अपने भावों को निश्चय से ही भोगता है। यह वस्तु स्वभाव के नियमानुसार निकल आयेगा कि आत्मा अशुद्ध निश्चय से अपने सुख दुख भाव का भोगता है और आत्मा शुद्ध निश्चय से अपने आत्मिक अतीन्द्रिय सुख भाव का भोगता है। इस पद्धति से इस प्रकार अर्थ होगा—प्रथम पंक्ति—आत्मा व्यवहार से (संयोगी व्यवहार से) पुद्गल कर्मों के फल-स्वरूप सुख दुःख सामग्री को भोगता है। दूसरी पंक्ति—(अ) आत्मा निश्चय से (अशुद्ध निश्चय से) वास्तव में अपने चेतनभावों को (सुखदुःख परिणामों को) भोगता है। तथा (ब) आत्मा (ज्ञानी आत्मा) निश्चय से (शुद्ध नय से) वास्तव में अपने या आत्मा के चेतन भावों को (शुद्धभावों को-अतीन्द्रिय सुख को) भोगता है।

पहली पद्धति का अर्थ तो जगत् प्रचलित है। दूसरी पद्धति

कर्तृत्व अधिकारवत् है और वस्तु स्वभाव से मेल खाती है कोई विरोध नहीं बैठता। तीसरी पद्धति में अर्थ इस प्रकार निर्दोष है कि चेतन भाव ऐसा सामान्य शब्द है कि सुख दुःख भाव को भी चेतन भाव कहते हैं और अतीन्द्रिय सुख को भी चेतन भाव कहते हैं तथा 'आत्मनः' शब्द जो सूत्र में है सो उसका अर्थ 'आत्मा का' भी होता है तथा 'अपना' भी होता है। दूसरी युक्ति यह कि ग्रन्थकार ने जिस पद्धति से कर्तृत्व अधिकार लिखा उसी पद्धति से तो भोक्तृत्व अधिकार का अर्थ करेंगे। तीसरी युक्ति यह है कि श्री अमृतचन्द्र जी ने जो भोक्तृत्व अधिकार का अर्थ श्रीपंचास्तिकाय के सूत्र २७ की टीका में कर दिया है। वह आगम प्रमाण है और उस आधार से यह तीसरी पद्धति ही बैठती है। अब यदि आप हमारी राय पूछते हों तो श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव के अभिप्राय अनुसार तो प्रथम पद्धति जान पड़ती है। और श्रीअमृतचन्द्र जी के भावों अनुसार तीसरी पद्धति जान पड़ती है। ग्रन्थकार ने हमारी राय से प्रथम पद्धति का अनुसरण किया है। फिर भी चिन्ता की कोई बात नहीं है। अर्थ तीनों पद्धतियों से बराबर आगम तथा अध्यात्म अनुसार है। ठीक है। प्रमाणित है। आप तीनों अर्थो को अच्छी तरह समझ लें। सूत्रों में अगाध अर्थ होता है। हमने सूत्र का पेट अच्छी तरह खोल दिया है।

## प्रश्नोत्तर

प्रश्न १०८—नौवें सूत्र में क्या वर्णन है ?

उत्तर—इस सूत्र में भोक्तृत्व अधिकार का वर्णन है।

प्रश्न १०९—आत्मा अज्ञान दशा में किसका भोक्ता है ?

उत्तर—आत्मा अज्ञानदशा में असद्भूत व्यवहार नय से पुद्गल कर्मो के फलस्वरूप सुख दुःख विषयों का [इष्ट अनिष्ट सामग्री का] भोक्ता है और सद्भूत व्यवहार से [अशुद्ध निश्चय से] अपने सुख दुःख भावका भोक्ता है।

नोट—प्रश्न उत्तर नं० ११० Cancell कर दिया है।

प्रश्न १११—आत्मा, ज्ञान-दशा में किसका भोक्ता है ?

उत्तर—आत्मा, ज्ञान-दशा में निश्चय-नय से अपने चेतन भावों का भोक्ता है।

प्रश्न ११२—चेतन-भावों का क्या अर्थ है ?

उत्तर—यहां अतीन्द्रिय सुख को चेतन-भाव कहा है।

प्रश्न ११३—ज्ञानी व्यवहार-नय से किसको भोगता है ?

उत्तर—चारित्र में जितना सुख दुःख है, चारित्र की अपेक्षा से सद्भूत व्यवहार में उसका भोक्ता है। ज्ञान की अपेक्षा से उसका ज्ञाता है और श्रद्धा की अपेक्षा से उसका अभोक्ता है।

नोट—प्रश्न उत्तर नं० ११४ Cancell कर दिया है।

प्रश्न ११५—यहां व्यवहार निश्चय किसको कहा है।

उत्तर—यहां इन्द्रिय विषयों को और सुख दुःख रूप अशुद्ध पर्याय को व्यवहार और अतीन्द्रिय सुख दुःख रूप शुद्ध पर्याय को निश्चय कहा है।

प्रश्न ११६—इस (भोक्तृत्व) अधिकार के जानने का क्या फल है ?

उत्तर—जीव ने अनादि काल से अपनी भूल के कारण अपने को सुख दुःख सामग्री का तथा सुख दुःख भावों का भोक्ता मान रखा है। अब इस मान्यता को छोड़ना है।

एक खास बात—भोक्ता अधिकार के विषय में शेष सब बातें कर्त्ता अधिकारवत् समझ लेना किन्तु एक ध्यान रहे कि जीव में तो कर्तृत्व भोक्तृत्व दोनों अधिकार होते हैं। पुद्गल कर्मों में कर्तृत्व अधिकार तो होता है पर भोक्तृत्व अधिकार नहीं होता क्योंकि भोक्तृत्व अधिकार का चेतन से संबन्ध है। एक और ध्यान रहे कि अज्ञानी कर्मों के कर्तृत्व और भोक्तृत्व में प्रभु (स्वामी) है और ज्ञानी कर्म के कर्तृत्व और भोक्तृत्व को समाप्त करके ज्ञानमार्ग का अनुसरण करने में प्रभु (स्वामी) है। दोनों स्वतन्त्र अपने २ मार्ग पर चलते हैं ऐसा ही कोई वस्तु स्वभाव है।

प्रश्न ११७—इस सूत्र का निर्माण किस आगम आधार से हुआ है ?

उत्तर—इसका निर्माण श्रीपंचास्तिकाय सूत्र ६३ से ७० पर से हुआ है।

# ज्ञानी के कर्त्ता भोक्ता का सार

(१) श्रद्धा अपेक्षा से—विभाव का स्वामी नहीं होने से ज्ञानी उन मलिन भावों का [राग द्वेष सुख दुख का] कर्त्ता भोक्ता नहीं है अकर्त्ता अभोक्ता ही है। सर्वथा ज्ञाता ही है। श्रद्धा अपेक्षा साक्षात् अकर्त्ता अभोक्ता होने से और विभाव रूप भाव का निश्चय नय से स्वामित्त्व का अभाव होने से अशुभ भाव हुवा तो निर्जरा में डाल दिया गया जैसे ज्ञानी का भोग निर्जरा के हेतु है।

(२) ज्ञान की अपेक्षा से—साधक भावों [सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र] और बाधक भावों [राग द्वेष सुख दुःख] का कर्त्ता भोक्ता नहीं किन्तु ज्ञाता ही है। दोनों ज्ञेय हैं। ज्ञानी दोनों का ज्ञाता है। किन्तु

(३) चारित्र की अपेक्षा से— उसी समय गुणस्थान अनुसार जितना अंश कर्मधारा [कषाय-सराग भाव] है उतने अंश में ज्ञानी चाहे क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्यों न हो बराबर कर्त्ता भोक्ता है हां अशुद्ध निश्चय नय से यानी व्यवहार नय से क्रोधादि भावों और हर्ष शोक इन्द्रिय संबधी सुख दुःख रूप आकुलता का भोगता और रागांश का कर्त्ता है। श्रद्धा ज्ञान अपेक्षा तो अकर्त्ता अभोक्ता, चारित्र अपेक्षा यथापदवी आंशिक रूप से कर्त्ता भोगता है ऐसा मानना चाहिये। बस इतनी बात की स्वीकारता के बाद द्रव्यस्वभाव जो मुख्य है उस की अधिकता के बल से ज्ञानी को सब विभाव भाव गौण है। पृथ्वी पिंडवत् ज्ञेय है। विश्व के साथ अखण्ड ज्ञेयज्ञायकपना तो स्वभाव सिद्ध

संबंध है किन्तु साधक की दृष्टि में निमित्त नैमित्तिक संबंध, कर्तृत्व भोक्तृत्व का संबंध पर से सर्वथा छूट गया है किन्तु जितना अंश राग रहा उतना संबंध तो निश्चय से जरूर है ही किन्तु गौण कर दिया है। स्वभाव सन्मुख एकता का बल बढ़ने के अनुसार अभाव होते रहते हैं। जितना स्वसन्मुख ज्ञातापना विकसित हुवा उतना अकर्त्ता अभोक्ता है। उसी समय जितना कषाय अंश है चारित्र अपेक्षा उतना कर्त्ता भोक्ता है। श्रद्धा ज्ञान चारित्र तीनों की अपेक्षा जिस रूप में है उस रूप में मानना चाहिए।

कर्त्ता भोक्ता अधिकार समाप्त हुआ।

(६) स्वदेह परिमाण अधिकार

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पतः चेतयिता।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चयनयतः असंख्यदेशो वा ॥

**सूत्रार्थ—आत्मा व्यवहार से समुद्घात अवस्था को छोड़कर संकोच विस्तार के कारण छोटे बड़े शरीर के बराबर है और निश्चय नय से लोक के बराबर असंख्यात-प्रदेशी है।**

## प्रश्नोत्तर

प्रश्न ११८—दसवें सूत्र में क्या वर्णन है?

**उत्तर—इसमें स्वदेह परिमाण अधिकार का वर्णन है।**

प्रश्न ११९—स्वदेह परिमाण अधिकार का वर्णन करो?

**उत्तर—आत्मा व्यवहार नय से समुद्घात अवस्था को छोड़कर संकोच विस्तार के कारण छोटे बड़े शरीर के बराबर है। और निश्चय से लोक के बराबर असंख्यात प्रदेशी है।**

प्रश्न १२०—यहां व्यवहार निश्चय किसको कहा है ?

उत्तर—प्रदेशवत्त्व गुण को निश्चय और प्रदेशवत्त्व गुण की विभाव पर्याय को व्यवहार कहा है।

प्रश्न १२१—यहां कौनसी व्यवहार है ?

उत्तर—यहाँ पर्याय रूप व्यवहार का वर्णन है।

प्रश्न १२२—इसके जानने का क्या फल है ?

उत्तर—"पर्यायदृष्टि मिथ्यादृष्टि-द्रव्यदृष्टि सम्यग्दृष्टि" पर्याय बुद्धि को छोड़ना है और द्रव्यदृष्टि को अंगीकार करना है।

प्रश्न १२३—यहां तो गुण को निश्चय कहा है ?

उत्तर—द्रव्य और गुण एक ही है। मात्र लक्ष्य लक्षण भेद कहा जाता है। गुण की अपेक्षा से जो प्रदेशवत्त्व गुण है वही अखण्ड द्रव्य का वाचक होने से शुद्ध आत्मा है।

प्रश्न १२४—यहां अन्तस्तत्त्व किस को कहा है ?

उत्तर—असंख्यात प्रदेशों को अर्थात् प्रदेशवत्त्व गुण को अन्तस्तत्त्व कहा है। प्रदेशत्व गुण से अभेद द्रव्य वाच्य है। गुण गुणी भेद नहीं है।

प्रश्न १२५—यहां वहिस्तत्व किसको कहा है ?

उत्तर—असंख्यात प्रदेशों की आकृति को अर्थात् प्रदेशवत्त्व गुण की विभाव पर्याय को बहिस्तत्त्व कहा है।

प्रश्न १२६—इस के जानने का क्या फल है ?

उत्तर—अन्तस्तत्त्व उपादेय है और वहिस्तत्त्व हेय है।

प्रश्न १२७—इस सूत्र का निर्माण किस आगम आधार से हुवा है ?

उत्तर—इस का निर्माण श्रीपंचास्तिकाय गा. नं० ३३, ३४ पर से हुवा है।

## (७) संसारी अधिकार

पुढविजलतेयवाऊ, वणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥११॥

समरणा श्रमरणा णेया, पंचिंदिय रिणम्मरणा परे सव्वे ।
वादरसुहमेइन्दी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥
मग्गरणगुरणठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धरणाया ।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धरणाया ॥१३॥

पृथिवीजलतेजोवायुवनस्पतयः विविधस्थावरैकेन्द्रियाः ।
द्विकत्रिकचतुःपंचाक्षाः त्रसजीवाः भवन्ति शंखादयः ॥११॥

समनस्काः अमनस्काः ज्ञेयाः पंचेन्द्रियाः निर्मनस्का परेसर्वे ।
वादरसूक्ष्मैकेन्द्रियाः सर्वे पर्याप्ताः इतरे च ॥१२

मार्गणागुणस्थानै. च चतुर्दशभिःभवन्ति तथा अशुद्धनयात्
विज्ञेयाः ससारिणः सर्वे शुद्धाः खलु शुद्धनयात् ॥१३॥

सूत्रार्थ ११—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति, ये सब अनेक प्रकार के स्थावर एक-इन्द्रिय जीव हैं, और दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रिय त्रस जीव हैं, जो शङ्खादि दो इन्द्रिय, चींटी आदिक ३ इन्द्रिय, भौंरा आदिक ४ इन्द्रिय, और मनुष्य आदि ५ इन्द्रिय हैं।

सूत्रार्थ १२—पाँच इन्द्रिय जीव मन सहित और मन रहित जानने चाहियें और शेष सब मन रहित जानने चाहियें। एक-इन्द्रिय वादर, सूक्ष्म है और ये सब जीव पर्याप्त और अपर्याप्त हैं।

सूत्रार्थ १३—व्यवहार नय से संसारी—जीव मार्गणा, गुण-स्थान और जीव-समासों से चौदह २ प्रकार से हैं। और निश्चय से सब ही संसारी जीव वास्तव में शुद्ध जानने चाहियें।

## प्रश्नोत्तर

प्रश्न १२८—संसारी अधिकार का वर्णन किन सूत्रों मे है ?

उत्तर—ग्यारह-बारह और तेरह इन तीन सूत्रों में है।

प्रश्न १२९—संसारी अधिकार का वर्णन करो ?

उत्तर—व्यवहार नय से संसारी जीव १४ जीव समास, १४ मार्गणा तथा १४ गुणस्थान रूप कहे गये हैं और निश्चय नय से सब संसारी जीव वास्तव में शुद्ध हैं।

## जीव समास

प्रश्न १३०—जीव समास किस को कहते है ?

उत्तर—त्रस-स्थावर जीवों को जीवसमास कहते हैं।

प्रश्न १३१—जीव-समास के नाम वताओ ?

उत्तर—एक इन्द्रिय सूक्ष्म, एक इन्द्रिय वादर, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय असंज्ञी, पाँच इन्द्रिय संज्ञी ये ७ भेद पर्याप्तक, ७ अपर्याप्तक कुल १४ भेद हैं।

प्रश्न १३२—जीव समास में किस को जीव कहा है ?

उत्तर—जीव समास में शरीर को जीव कहा है।

प्रश्न १३३—जीव समास में किसको व्यवहार किसको निश्चय कहा है ?

उत्तर—जीव समास में पर-द्रव्यको व्यवहार और स्वद्रव्य को निश्चय कहा है ?

प्रश्न १३४—जीव समास में कौनसी व्यवहार है ?

उत्तर—जीव सभास में संयोग रूप व्यवहार है।

प्रश्न १३५—जीव समास को जानने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—अनादि काल से शरीर को आत्मा मान रक्खा है अव उस मान्यता को छोड़ कर आत्म द्रव्य में आत्मा का श्रद्धान करना है।

## गुणस्थान

प्रश्न १३६—गुणस्थान किसको कहते है ?

उत्तर—मोह और योग से होने वाली जीव की विभाव पर्याय को गुण-स्थान कहते हैं।

प्रश्न १३६—गुणस्थानों के नाम वताओ ?

उत्तर—(१) मिथ्यात्व, (२) सासादन (३) मिश्र (४) अविरतसम्यग्दृष्टि (५) देशविरत (६) प्रमत्तविरत (७) अप्रमत्तविरत (८) अपूर्वकरण (९) अनिवृत्तिकरण (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११) उपशान्तमोह (१२) क्षीणमोह (१३) सयोगकेवली (१३) अयोगकेवली, कुल १४ हैं।

प्रश्न १३८—गुणस्थानों में किसको जीव कहा है ?

उत्तर—गुणस्थानों में जीव की मोह और योगरूप विभाव पर्याय को जीव कहा है।

प्रश्न १३९—गुणस्थानों में किस को व्यवहार किसको निश्चय कहा है ?

उत्तर—गुणस्थानों में पर्याय को व्यवहार और द्रव्य को निश्चय कहा है।

प्रश्न १४०—गुणस्थानों को जानने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—अनादि काल से औपपाधिक पर्याय को ही जीव मान रक्खा है। अब पर्याय बुद्धि को छोड़ कर स्वतः सिद्ध जीव द्रव्य में निज बुद्धि करनी है।

## मार्गणास्थान

प्रश्न १४१—मार्गणा किसको कहते हैं ?

उत्तर—जीव के ढूंढने के स्थानों को मार्गणा कहते हैं।

प्रश्न १४२—मार्गणा के नाम बताओ ?

उत्तर—चौदह हैं:—(१) गति (२) इन्द्रिय (३)काय (४) योग (५) वेद (६) कषाय (७) ज्ञान (८) संयम (९) दर्शन (१०) लेश्या (११) भव्यत्व (१२) सम्यक्त्व (१३) संज्ञित्व (१४) आहार।

प्रश्न १४३—मार्गणा में व्यवहार निश्चय किसको कहा है ?

उत्तर—कुछ मार्गणाओं में संयोग को व्यवहार कहा है, कुछ में पर्याय को व्यवहार कहा है और निश्चय सब में स्वद्रव्य को कहा है।

प्रश्न १४४—मार्गणाओं को जानने का क्या फल है ?

उत्तर—मार्गणाओं को जीव नहीं मानना चाहिये किन्तु मार्गणाओं में पाये जाने वाले त्रिकाली ज्ञायक आत्मा को जीव मानना चाहिये।

## "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया"

प्रश्न १४५—'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' का क्या अर्थ है ?

उत्तर—तीन लोक के सब संसारी जीव निश्चय नय से वास्तव में शुद्ध हैं।

प्रश्न १४६—ससारी जीवों की आत्मा तो अशुद्ध है फिर सब को शुद्ध कैसे कह दिया है ?

उत्तर—पर्याय की शुद्धता और द्रव्य की शुद्धता का भिन्न २ अर्थ है। यहाँ द्रव्य की शुद्धता का कथन है।

प्रश्न १४७—पर्याय में शुद्ध किस को कहते हैं ?

उत्तर—पर्याय में जब तक मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग का परिणमन है तब तक द्रव्य पर्याय में अशुद्ध है और इन के अभाव होने पर द्रव्य पर्याय में शुद्ध है। इस को यों भी सकते हैं कि जब तक द्रव्य औदयिक भावों में वर्त रहा है तब तक अशुद्ध है और जब पूर्ण क्षायिक भावों में वर्तता है तब शुद्ध है अर्थात् औदयिक भाव को पर्याय की अशुद्धता और क्षायिक भाव को पर्याय की शुद्धता कहते हैं। यहाँ विभाव का अर्थ विपरीत भाव अर्थात् औदयिक भाव है और स्वभाव का अर्थात् क्षायिक भाव है।

प्रश्न १४८—द्रव्य की शुद्धता क्या है ?

उत्तर—द्रव्य औदयिक भावों में वर्ते या क्षायिक भावों में, इस से कुछ प्रयोजन नहीं किन्तु औदयिक औपशमिक, क्षायिक, और क्षायोपशमिक चारों नैमित्तिक भावों को दृष्टि में गौण करके अनादि अनंत स्वतः सिद्ध, सत् को लक्ष्य में लेना शुद्ध द्रव्य है। यहाँ नैमित्तिक भाव को अशुद्धता और स्वतः सिद्ध भाव को शुद्धता कहा है। इस

दृष्टि में क्षायिक भाव भी अशुद्धता है। यहाँ चारों भावों को विभाव अर्थात् विशेष भाव कहते हैं और द्रव्य को स्वभाव कहते हैं। यह दृष्टि सम्यक्त्व का विषय है (श्री पंचाध्यायी सूत्र ९०१, श्रीनियम-गा. ४१ तथा श्रीद्रव्यसंग्रह सूत्र ६) इस द्रव्यदृष्टि में संसार मोक्ष ही नहीं। कर्म बन्ध ही नहीं। सत् त्रिकाल शुद्ध निरावरण आकाशवत् निर्लेप है। संसार मोक्ष तो पर्याय दृष्टि में हैं। उसको 'ज्ञायक' परम पारिणामिक, कारण परमात्मा, अन्तस्तत्त्व आदि अनेक नामों से कहते है। श्री नियमसार जी में कहा है।

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जरमरणजम्ममुक्का अट्ठगुणालंकिया जेण ॥४७॥

अर्थ—जैसी सिद्ध आत्मायें हैं, वैसे भवलीन (संसारी) जीव हैं, क्योंकि (वे संसारी जीव सिद्धात्माओं की तरह) जन्म-जरा-मरण से रहित और आठ गुणों से अलंकृत हैं।

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया ॥४८॥

अर्थ—जैसे लोकाग्र में सिद्ध भगवान् अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा (विशुद्धस्वरूपी) है, उसी प्रकार के संसार में (सब) जीव जानना।

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी जीवा ॥४९॥

अर्थ—ये (पूर्वोक्त) सब भाव वास्तव में व्यवहार नय को आश्रय करके (संसारी जीवों में विद्यमान) कहने में आया है; शुद्ध नय से संसार में रहने वाले सब जीव सिद्धस्वभावी हैं।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥५०॥

अर्थ—पूर्वोक्त सब भाव परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिये हेय हैं, अन्तस्तत्त्व ऐसा स्वद्रव्य—आत्मा—उपादेय है। वस भाई वह जो अन्तस्तत्त्व है वही शुद्ध है। उसी के अवलम्बन से अनादिकालीन मोह का नाश होता है।

प्रश्न १४९—इस अन्तस्तत्त्व के जानने का क्या फल है ?

उत्तर—यह तो द्वादशाँग का सार है। जिसने इसको अनुभव कर लिया वह निश्चय से श्रुतकेवली हो गया (श्री प्रवचनसार गा. ३३)। नौ तत्वों में रहने वाले इस सत् के श्रद्धान, ज्ञान और आचरण को ही सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र कहते हैं।

आवश्यक सूचना—यह विषय द्रव्यानुयोग का प्राण है। मुमुक्षुओंको इस विषयका खास अध्ययन करना चाहिये। किसी ज्ञानी पुरुष की कृपा से ही यह विषय समझ में आ सकता है। श्रीसमयसार तथा नियमसार में तो वर्णन ही इसका है। श्रीपंचाध्यायी चौथी पुस्तक पन्ना ६०३ से ६१८ तक विशेष उपयोगी है। उसमें इसको हाथ पर रख कर दिखलाया है। अवश्य अभ्यास करें। कल्याण होगा।

प्रश्न १५०—यहां अन्तस्तत्त्व किस को कहा है ?

उत्तर—"सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" पद में सामान्य आत्मा को अन्तस्तत्त्व कहा है। इसको निश्चय जीव तत्त्व कहते है। जीवत्त्व भाव भी इसी का नाम है। परमपूज्य पंचमभाव भी यही है।

प्रश्न १५१—यहां बहिस्तत्त्व किस को कहा है ?

उत्तर—१४ मार्गणा, १४ गुणस्थान और १४ जीव समास रूप पर्यायों को बहिस्तत्त्व कहा है। इन को व्यवहारी जीव भी कहते हैं। (श्रीसमयसार गा. ५० से ५५ तक)।

प्रश्न १५२—इसके जानने का क्या फल है ?

उत्तर—जो मात्र इन मार्गणा, गुणस्थान और जीवसमास रूप पर्यायों को ही जीव मानता है और इन पर्यायों में रहने वाले सामान्य आत्मा

को नही जानता वह मिथ्यादृष्टि है और जो इन पर्यायों में रहने वाले सामान्य तत्त्व का आश्रय करता है वह सम्यग्दृष्टि है ऐसा भेदविज्ञान करना ही इन सूत्रों का प्रयोजन है।

प्रश्न १५३—इन सूत्रों का निर्माण किस आगम आधार से हुवा है ?

उत्तर—इनका निर्माण श्रीपंचास्तिकाय गा. नं० १०९ से १२३ पर से हुवा है।

आत्मा का निरुपाधि स्वरूप

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवएहि संजुत्ता ॥१४॥

निष्कर्माणः अष्टगुणाः किंचिदूनाः चरमदेहतः सिद्धाः।
लोकाग्रस्थिताः नित्याः उत्पादव्ययाभ्यां संयुक्ताः ॥१४॥

(८) सिद्धत्व अधिकार

सूत्रार्थ—(१) जो द्रव्य कर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित है, (२) आठ गुण सहित है, (३) अन्तिम देह से कुछ कम आकार वाले है, (४) नित्य हैं और (५) उत्पाद व्यय से संयुक्त हैं, वे सिद्ध हैं।

(९) ऊर्ध्व-गमन स्वभाव अधिकार

सूत्रार्थ—वे सिद्ध, ऊर्ध्व गमन स्वभाव से सीधे ऊपर को गमन करके लोक के अग्र भाग में स्थित रहते हैं।

## प्रश्नोत्तर

प्रश्न १५४—सूत्र नं० १४ मे क्या वर्णन है ?

उत्तर—इसमें "सिद्धत्व" तथा "ऊर्ध्व गमन स्वभाव" इन दो अधिकारों का वर्णन है।

प्रश्न १५५—कुछ द्रव्यसंग्रह की हिन्दी टीकाओं में ऊर्ध्वगमन की भिन्न गाथा छपी है ना ?

उत्तर—यह सूत्र द्रव्यसंग्रह के कर्त्ता का नहीं है किन्तु श्रीपंचास्तिकाय की गाथा नं० ७३ है। जिसके कर्त्ता श्री कुन्दकुन्द आचार्य देव हैं।

प्रश्न १५६—सिद्धत्व अधिकार का वर्णन करो ?

उत्तर—(१) जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित हैं। (२) सम्यक्त्व आदि आठ गुण सहित हैं। (३) अन्तिम शरीर से कुछ कम आकार वाले हैं। (४) नित्य अर्थात् ध्रुव है क्योंकि सिद्ध नाश रहित है। (५) उत्पादव्यय कर संयुक्त हैं। यहाँ उत्पादव्यय से भाव अगुरुलघु-गुण की षट्स्थान पतित हानिवृद्धि पर्याय से है। सिद्ध में वही पर्याय मानी जाती है। क्षायिक पर्याय व्यवहार से कही गई है।

प्रश्न १५७—ऊर्ध्व गमन स्वभाव का वर्णन करो ?

उत्तर—वे सिद्ध ऊर्ध्व गमन स्वभाव से सीधे ऊपर को गमन करके लोक के अग्र भाग में स्थित रहते हैं।

प्रश्न १५८—सूत्र मे ऊर्ध्वगमन स्वभाव का वर्णन किस शब्द से किया है ?

उत्तर—"लोयग्गठिदा" शब्द से ऊर्ध्वगमन स्वभाव का वर्णन किया है और शेष सूत्र में सिद्धत्व अधिकार का वर्णन है।

प्रश्न १५९—सिद्धत्व अधिकार द्रव्य है, गुण है या पर्याय है ?

उत्तर—सिद्धत्व अधिकार शुद्ध जीवस्तिकाय नामा द्रव्य है।

प्रश्न १६०—सिद्धत्व अधिकार निश्चय नय का विषय है या व्यवहार नय का ?

उत्तर—ये दो नय तो संसारी जीव में लगा करती हैं। सिद्ध तो नयातीत हैं। अतः सूत्र में ऐसा कोई शब्द नहीं है।

प्रश्न १६१—सिद्धत्व अधिकार के जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—सब से बड़ा लाभ तो सिद्धत्व अधिकार के जानने से ही है। और वह यह कि—वर्तमान में मूल जीव पदार्थ द्रव्यकर्म, भावकर्म,

नोकर्म से मिश्रित है। और इस मिश्रितपने के कारण इस के गुणों का भी विभाव परिणमन हो रहा है। तथा अमूर्त्त प्रदेशों के साथ शरीर का सम्बन्ध है अतः वह मूल पदार्थ और उसका मूल स्वभाव ऐसा लोप सा हो गया है कि पता ही नहीं चलता कि जीव का मूल स्वभाव क्या है ? है भी या नहीं ? इस अधिकार में क्योंकि जीव का निरुपाधि स्वरूप है, अतः झट जीव को अपने घर का पता चल जाता है कि बस जो सिद्ध में है वह मुझ में है। जो उसमें नहीं वह मुझमें भी नहीं। वर्तमान में भी मेरा द्रव्य मूल पदार्थ वैसा ही है जैसा सिद्ध का है। यह अधिकार तो सम्यक्त्व का मूल है किन्तु द्रव्यदृष्टि से जानने योग्य है। पर्यायदृष्टि से जानने से क्षायिक भाव तो पकड़ में आयेगा। मूल मेटर रह जायेगा। यह अधिकार मूल मेटर का है जो सम्यक्त्व का विषय है। अब प्रत्येक विशेषण को भिन्न २ स्पष्ट करते है ताकि जीव को अपने घर का अच्छी तरह पता चले।

## णिकम्मा

प्रश्न १६२—कर्मरहितपना किस को कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म को साधारणतया कर्म कहते है। सिद्ध इन से रहित हैं। अतः वे निष्कर्म कहे जाते हैं।

प्रश्न १६३—द्रव्य-कर्म किस को कहते है ?

उत्तर—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठ कर्मो को द्रव्यकर्म कहते है।

प्रश्न १६४—भाव-कर्म किस को कहते हैं ?

उत्तर—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप विकार को भाव-कर्म कहते हैं।

प्रश्न १६५—नो कर्म किसको कहते है ?

उत्तर—आहारवर्गणा, मनोवर्गणा, भाषावर्गणा, के बने हुवे मन वचन काय को और तैजस-वर्गणा को नोकर्म कहते हैं और संयोगरूप परद्रव्य को नोकर्म कहते हैं।

## अट्ठगुणा

प्रश्न १६६—सिद्ध आठ गुण सहित है इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—आत्मा तो अनन्त गुणों का पिण्ड है पर अनादि कर्मसंयोग के कारण आठ कर्मों के निमित्त से आठगुणों का परिणमन अनादि से विभावरूप चल रहा था और द्रव्य गुणों का पिण्ड कहलाता है। अतः द्रव्य स्वयं अशुद्ध हो रहा था। सिद्ध होने पर कर्मो का सर्वथा अभाव होने से उन गुणों का जैसा स्वतः सिद्ध स्वभाव था वह वैसा ही रह जाता है। अतः सिद्ध को आठ गुण सहित कहा जाता है।

## 'चरमदेहदो किंचूणा'

प्रश्न १६७—अन्तिम शरीर से कुछ कम आकार का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—आत्मा में एक प्रदेशवत्त्व गुण है। लोक के बराबर असंख्यात प्रदेश उसका माप है। उस गुण का स्वभाव अन्तिम शरीर से कुछ कम आकार में रहने का है। वह गुण अनादि कर्म नोकर्म संयोग के कारण विकृत हो रहा था। अब सिद्ध में शुद्ध स्वतः सिद्ध स्वभाव को धारण कर लिया है यह यहाँ आशय है क्योंकि यह द्रव्य की मूल भूमि है। इसका स्पष्टीकरण श्रीपंचास्तिकाय गा. ३५ टीका में है। तथा श्रीसमयसार परिशिष्ट में ४७ शक्तियों में चौबीसवीं शक्ति इस प्रकार है:—जो अनादि संसार से लेकर संकोच विस्तार से लक्षित है और जो चरम शरीर के परिमाण से कुछ न्यून परिमाण से अवस्थित होता है ऐसा लोकाकाश के माप जितना मापवाला आत्म-अवयवत्त्व जिस का लक्षण है ऐसी नियत प्रदेशत्व शक्ति। मूल जीवास्तिकाय नामा पदार्थ शरीर

से अत्यन्त भिन्न अपने अत्यन्त अमूर्तिक प्रदेशों में है । यही यहाँ ग्रंथकार दिखलाना चाहते हैं ।

## लोयग्गठिदा

प्रश्न १६८—लोकाग्रस्थित: से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—शुद्ध जीवास्तिकाय जो स्वतः सिद्ध पदार्थ है वह चाहे जहाँ पड़ा रहे यह उसका स्वभाव है या कुछ और है सो उसके उत्तर में कहते हैं कि यह भी वस्तु स्वभाव है कि वह मूल जीव पदार्थ स्वतः अकारण ऊपर जाकर लोक के अग्रभाग में ठहर जाता है और अंतिम-पुरुषाकार को धारण किये निष्कम्प अनन्त काल तक वहाँ ही स्थित रहता है । यदि इस बात को न दिखलाते तो आत्मा के एक स्वभाव का ख्याल न आता । यह भी दिखाना जरूरी था ।

## णिच्चा

प्रश्न १६९—नित्या: से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—जिस प्रकार चारों गतियाँ मर्यादित समय के बाद नाश हो जाती हैं तो यह संदेह हो सकता है कि कर्मो के नाश होने पर क्या उस मूल पदार्थ का भी नाश हो जाता है तो कहते हैं कि नहीं वह विद्यमान रहता है । फिर यह शंका हो सकती है कि कितने समय तक विद्यमान रहता है ? तो कहते हैं कि वह नित्य ही रहता है । उसका कभी अन्त ही नहीं । वह तो स्वतः सिद्ध मूल पदार्थ है उसका नाश कैसे हो जायेगा । इसमें ठीक वही अभिप्राय है जो श्रीअमृतचंद्र जी ने श्रीपंचास्तिकाय की गा. ३७ की टीका में स्पष्ट किया है । उसको पढ़ने से इस नित्य विशेषण के भाव का ठीक ख्याल आ जाता है ।

## 'उप्पादवयेहिं संजुत्ता'

प्रश्न १७०—'उत्पादव्ययसंयुक्त' पद देने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—कोई यह न समझ ले कि जब तक जीव संसार में एक गति से दूसरी गति में गमन करता है तभी तक परिणमन रहता है और

सिद्ध में जाकर कूटस्थ हो जाता है; किन्तु ऐसा नहीं होता; वहां भी द्रव्य बराबर परिणामी बना रहता है।

प्रश्न १७१—यह शंका तो मुझे भी थी। वहा क्या परिणमन है ?

उत्तर—वहां अगुरुलघु गुण का स्वतः सिद्ध षट्स्थानपतित हानि वृद्धिरूप परिणमन है। जो आगम प्रमाण से सिद्ध है। केवल ज्ञान गम्य है। छद्मस्थ के अगोचर है। श्री आलापपद्धति में कहा है:—

"सूक्ष्मा वागगोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणा-दभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः।"

अर्थ—जो सूक्ष्म, वचन के अगोचर और प्रतिसमय में परिणमन-शील अगुरुलघु नाम के गुण हैं उन्हें आगमप्रमाण से स्वीकार करना चाहिये।

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुवे जो सूक्ष्म तत्त्व हैं वे हेतुओं के द्वारा खण्डित नहीं किये जा सकते हैं इसलिये जो तत्त्व सूक्ष्म हैं उन पदार्थों को तो आगमप्रमाण से ही ग्रहण करना चाहिये कारण कि जिनेन्द्र भगवान् अन्यथावादी नहीं होते हैं।

प्रश्न १७२—वहां क्षायिक भाव का परिणमन भी तो होगा। उसकी अपेक्षा उत्पादव्यय कहना चाहिये ?

उत्तर—हां। वहां क्षायिक भावों का परिणमन भी है। उसकी अपेक्षा से भी उत्पाद व्यय कह सकते हैं। सद्भाव उसका भी नित्य निरन्तर निश्चय रूप से है पर एक विवेक की बात है कि सिद्ध की वह क्षायिक पर्याय व्यवहार नय से कही जाती है क्योंकि कर्माभाव सापेक्ष है। सादि है। सहेतुक है। पहला नम्बर अगुरुलघु की पर्याय का है क्योंकि वह कर्मनिरपेक्ष होने से निश्चय से है। दूसरा नम्बर इस क्षायिक पर्याय का है क्योंकि यह कर्म सापेक्ष होने से व्यवहार से है। उत्पाद व्यय दोनों की अपेक्षा निश्चय से है।

## सिद्धा

प्रश्न १७३——सूत्र मे 'सिद्धा' पद से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर——शुद्ध जीवास्तिकाय नामा द्रव्य, उसके अनन्त गुण तथा उन गुणों का शुद्ध परिणमन अर्थात् 'शुद्धगुणपर्यायमय शुद्ध जीवास्तिकाय नामा द्रव्य' जो प्रमाण का विषय है–वह यहां सिद्ध का अर्थ है। केवल क्षायिक पर्याय का वर्णन आगे सूत्र ३७ में है। केवल सामान्य द्रव्य का वर्णन पहले संसारी अधिकार में "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" पद में किया है। यहां क्षायिक पर्याय युक्त उस जीवास्तिकाय का वर्णन है अर्थात् शुद्धद्रव्यगुणपर्यायमय पूर्ण अनेकान्तात्मक वस्तु का विवेचन यहां किया है जो मूल जीव नामा पदार्थ है। इस का स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि द्रव्यार्थिक नय से जीव एक प्रकार का है और पर्यायार्थिक नय से संसारी और सिद्ध दो प्रकार का है। जिसमें मिथ्यात्व, अवरति, प्रमाद, कषाय और योग का संयोग है वह संसारी है और जो इनसे रहित है वह सिद्ध हैं। इस प्रकार सिद्ध शब्द पर्याय का ही वाचक है। यहां सामान्य जीव द्रव्य का व्याख्यान चला आ रहा है। जिस प्रकार संसारी अधिकार में संसारी की पर्याय और द्रव्य दोनों का परिज्ञान कराया अर्थात् सम्पूर्ण संसारी जीव वस्तु का स्वरूप बताया, उसी प्रकार यहां सिद्ध में भिन्न २ सामान्य विशेष स्वरूप तो है नहीं जो दो नयों से भिन्न २ उसका निरूपण करें क्योंकि द्रव्य पर्यायमय पूर्ण वस्तु अखण्ड रूप से कर्मों से रहित है, आठ गुण सहित है, चरमदेह से कुछ कम आकार वाली है, लोक के अग्रभाग में स्थित है, नित्य उसी रूप को धारण करने वाली है और शुद्ध उत्पादव्यय कर संयुक्त है ऐसी वह सम्पूर्ण सिद्ध वस्तु अर्थात् शुद्ध जीव नामा पदार्थ है। यहां "सिद्धा" विशेष्य है और पांच उसके विशेषण हैं।

वर्णन किया है। अतः "सिद्धा" पद द्रव्य का वाचक है पर्याय का नहीं।

प्रश्न १७४—मुक्त आत्मा मे अधिकारो को घटा कर दिखलाओ ?

उत्तर—(१) भाव प्राणधारण जिसका लक्षण है (स्वरूप है) ऐसा 'जीवत्व' होता है (२) चित् परिणाम जिसका लक्षण (स्वरूप) है ऐसा 'उपयोग' होता है (३) उपाधि के सम्वन्ध से रहित ऐसा आत्यन्तिक (सर्वथा) 'अमूर्तपना' होता है। (४) समस्त वस्तुओं से असाधारण ऐसे स्वरूप की निष्पत्तिमात्र (निज स्वरूप के रचने मात्र) 'कर्तृत्व' होता है। (५) स्वरूपभूत स्वातन्त्र्य जिसका लक्षण (स्वरूप) है ऐसे सुख की उपलब्धि रूप 'भोक्तृत्व' होता है। (६) अतीत अनन्तर (आखरी) शरीर प्रमाण अवगाहपरिणामरूप 'देहप्रमाणपना' होता है (७) 'संसारस्थपना' होता नहीं है क्योंकि संसार से पार हो गया है। (८) सिद्ध और ऊर्ध्वगमन का ऊपर विवेचन किया ही है।

प्रश्न १७५—इस सूत्र का निर्माण किस आगम आधार से हुआ है ?

उत्तर—इसका निर्माण श्रीपंचास्तिकाय नं० २८, २९, १०९ तथा श्रीनियमसार गा. ७२ तथा १७७ से १८३ पर से हुवा है।

सामान्य जीव द्रव्य का निरूपण समाप्त हुवा

## परिशिष्ट

प्रश्न १७६—जीव के भेद करने की विधि क्या है ?

उत्तर—(१) जीव नित्य चैतन्य-उपयोगी होने से एक प्रकार का ही है। (२) ज्ञानोपयोगी तथा दर्शनोपयोगी इस प्रकार दो भेद वाला है अथवा भव्य अभव्य से दो भेद वाला है अथवा संसारी सिद्ध दो प्रकार का है (३) कर्मचेतना, कर्मफलचेतना, ज्ञानचेतना से अथवा द्रव्य गुण पर्याय से अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्य से तीन प्रकार का है

(४) चार गतियों में भ्रमण करने से चार प्रकार का है (५) पाँच औदयिक आदि भावयुक्त होने से पाँच प्रकार का है। (६) विग्रहगति में छः दिशाओं में गमन करने से छः प्रकार का है (७) अस्ति, नास्ति आदि सात भंग सहित होने से सात प्रकार का है (८) आठ कर्म आश्रित अथवा आठ गुण आश्रित होने से आठ प्रकार का है (९) नौ पदार्थ रूप विशेष परिणमन करने से नौ प्रकार का है। इत्यादि प्रकार से अनन्त गुण भेद होने से अनन्तप्रकार का है। सो जीव के अनन्त तक भेद हो सकते हैं। इन से उसका स्वरूप विशेष रूप से ख्याल में आ जाता है (यह कथन अशुद्धद्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से है)।

## सामान्य अजीव द्रव्य का निरूपण

### (सूत्र १५ से २७ तक १३)

#### अजीव द्रव्य

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥१५॥

अजीव. पुन: ज्ञेय: पुद्गल: धर्म: अधर्म: आकाशम्।
काल:पुद्गल मूर्त्त. रूपादिगुण:अमूर्त्ता: शेषा:तु॥१५॥

सूत्रार्थ—और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अजीव जानने चाहियें। पुद्गल रूपादि गुण वाला मूर्त्त है और शेष अमूर्त है।

#### पुद्गल की १० समान जातीय द्रव्यपर्यायें

सद्दो वंधो सुहुमो, थूलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

शब्द. वंध: सूक्ष्म: स्थूल: संस्थानभेदतमश्छाया:।
उद्योतातपसहिता: पुद्गलद्रव्यस्य पर्याया: ॥१६॥

सूत्रार्थ—शब्द[1], बन्ध[2], सूक्ष्म[3], स्थूल[4], संस्थान[5], भेद[6], तमस्[7], छाया[8], उद्योत[9], आतप[10], सहित पुद्गल द्रव्य की (दस) पर्यायें है।

भावार्थ—ये दस पुद्गल स्कंधों की जातियां हैं जिनको समान जातीय द्रव्य पर्याये भी कहते हैं।

धर्म द्रव्य का स्वरूप

गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

गतिपरिणतानां धर्मः पुद्गलजीवाना गमनसहकारी।
तोयं यथा मत्स्यानां अगच्छता नैव सः नयति ॥१७॥

सूत्रार्थ—गति परिणत पुद्गल जीवों के गमन में सहकारी (निमित्त मात्र कारण) धर्म द्रव्य है जैसे गति परिणत मच्छलियों के गमन में जल। नहीं चलते हुवों को वह (जबरदस्ती) नहीं चलाता है।

अधर्म द्रव्य का स्वरूप

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

स्थानयुतानां अधर्मः पुद्गलजीवाना स्थानसहकारी।
छाया यथा पथिकाना गच्छता नैव स.धरति ॥१८॥

सूत्रार्थ—ठहरे हुवे पुद्गल जीवों के ठहरने में सहकारी (निमित्त मात्र कारण) अधर्म द्रव्य है। जैसे ठहरे हुवे पथिकों के ठहरने में छाया। चलते हुवों को वह (जबरदस्ती) नहीं ठहराता है।

आकाश द्रव्य का स्वरूप

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

अवकाशदानयोग्यं जीवादीनां विजानीहि आकाशम्।
जैनं लोकाकाशं अलोकाकाशं इति द्विविधम् ।।१९।।

सूत्रार्थ--जीवादि के अवकाश (स्थान-जगह) देने योग्य (निमित्त मात्र कारण) श्रीजिनेन्द्रदेव का कहा हुवा आकाश जानो। वह लोकाकाश और अलोकाकाश इस प्रकार दो भेद रूप है।

लोक अलोक का विभाग

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ।।२०।।

धर्माधर्मौ कालः पुद्गलजीवाः च सन्ति यावतिके।
आकाशे सः लोकः ततः परतः अलोकःउक्तः।।२०।।

सूत्रार्थ—जितने आकाश में धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव हैं वह लोक है। उस से परे अलोक कहा गया है।

काल द्रव्य का स्वरूप

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो ।।२१।।

द्रव्यपरिवर्तनरूपः यः सः कालः भवेत् व्यवहारः।
परिणामादिलक्ष्यःवर्त्तनालक्षणः च परमार्थः।।२१।।

सूत्रार्थ—जो द्रव्यों के परिवर्तन रूप है और परिणाम आदि लक्षणों से जाना जाता है वह व्यवहार काल है और वर्तना लक्षण निश्चय काल द्रव्य है।

निश्चय काल द्रव्य का विशेष स्वरूप

लोयायासपदेसे, इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।
रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंखदव्वाणि ।।२२।।

लोकाकाशप्रदेशे एकैकस्मिन् ये स्थिताः हि एकैकाः।
रत्नानां राशिः इव ते कालाणवः असंख्यद्रव्याणि ।।२२।।

सूत्रार्थ—लोकाकाश के एक एक प्रदेश में जो एक एक कालाणु रत्नों की राशि के समान वास्तव में ठहरे हुवे है वे असंख्यात द्रव्य है ।

पंचास्तिकाय

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

एवं षड्भेदं इदं जीवाजीवप्रभेदतः द्रव्यम् ।
उक्तं कालवियुक्तं ज्ञातव्याः पंच अस्तिकायाः तु ॥२३॥

सूत्रार्थ—इस प्रकार यह द्रव्य जीव अजीव के अवान्तर भेद से छह भेद रूप कहा गया है और काल को छोड़कर पाँच तो 'अस्तिकाय' जानने चाहियें ।

अस्तिकाय का स्वरूप

संति जदो तेणेदे, अत्थित्ति भणंति जिणवरा जह्मा ।
काया इव बहुदेसा, तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

सन्ति यतः तेन एते अस्ति इति भणन्ति जिनवराः यस्मात् ।
काया इव बहुदेशाःतस्मात् कायाःच अस्तिकायाः च ॥२४॥

सूत्रार्थ—क्योंकि ये "हैं" इसलिये श्रीजिनेन्द्रदेव "अस्ति" ऐसा कहते हैं और क्योंकि काया के समान बहुप्रदेशी हैं इसलिये 'काया' कहते हैं और इसी से अस्ति+काया='अस्तिकाया' हैं ।

प्रदेश संख्या

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

भवन्ति असंख्याः जीवे धर्माधर्मयोः अनन्ताः आकाशे ।
मूर्ते त्रिविधाः प्रदेशाः कालस्य एकः न तेन सः कायः ॥२५॥

सूत्रार्थ—एक जीव में, धर्म-अधर्म में असंख्यात प्रदेश हैं । आकाश में अनन्त प्रदेश हैं । पुद्गल में तीन प्रकार संख्यात-असंख्यात और

अनन्त प्रदेश हैं। काल के एक है इसलिये वह काय नहीं है।

पुद्गल का एक अणु भी कायवान् है

एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥

एकप्रदेशः अपिअणुः नानास्कन्धप्रदेशतः भवति ।
बहुदेशः उपचारात् तेन च कायः भणन्ति सर्वज्ञाः ॥२६॥

सूत्रार्थ—एक प्रदेशी भी अणु अनेक स्कंधप्रदेशों का कारण होने से उपचार से बहुप्रदेशी है और इसलिये श्री सर्वज्ञदेव काय कहते हैं।

एक प्रदेश का नाम

जावदियं आयासं, अविभागीपुग्गलाणुउट्ठद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

यावतिकं आकाशं अविभागि पुद्गलाण्ववष्टब्धम्।
तं खलु प्रदेशं जानीहि सर्वाणुस्थानदानार्हम् ॥२७॥

सूत्रार्थ—जितना आकाश अविभागी पुद्गल परमाणु से रोका जाय उस को निश्चय करके प्रदेश जानो। वह सब परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ है (निमित्त मात्र कारण है)।

## प्रश्नोत्तर

सूत्र १५ से २७ तक पर "अजीव तत्त्व निरूपण"

प्रश्न १७७—अजीव द्रव्य के कितने भेद है ?

उत्तर—पाँच; पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

प्रश्न १७८—इनमे अमूर्त्तिक कितने हैं ?

उत्तर—एक पुद्गल मूर्त्तिक है शेष धर्म-अधर्म, आकाश और काल अमूर्तिक है।

प्रश्न १७९—पुद्गल की गुण-पर्याय बताओ ?

उत्तर—पुद्गल के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ४ गुण है। २० गुण पर्यायें हैं और १० समान जातीय द्रव्य-पर्यायें है।

प्रश्न १८०—पुद्गल की १० समान जातीय द्रव्य-पर्यायो के नाम बताओ ?

उत्तर—दस-शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तमस् छाया, आतप, उद्योत।

प्रश्न १८१—धर्म द्रव्य का स्वरूप बताओ ?

उत्तर—जो गति रूप परिणये जीव पुद्गलों के गमन में सहकारी (निमित्त मात्र कारण) हो, वह धर्म द्रव्य है जैसे मच्छलियों के लिये जल। नहीं चलते हुवों को वह जबरदस्ती नहीं चलाता है।

प्रश्न १८२—अधर्म द्रव्य का स्वरूप बताओ ?

उत्तर—गमन पूर्वक ठहरे हुवे जीव पुद्गलों को जो ठहरने में सहकारी (निमित्त मात्र कारण) हो वह अधर्म द्रव्य है जैसे पथिकों के लिये छाया। चलते हुवों को वह जबरदस्ती नहीं ठहराता है।

प्रश्न १८३—आकाश द्रव्य का स्वरूप बताओ ?

उत्तर—जो जीवादिक सभी द्रव्यों को अवकाश देने योग्य (अवकाश में निमित्त मात्र) है वह आकाश द्रव्य है।

प्रश्न १८४—आकाश द्रव्य के कितने भेद है ?

उत्तर—आकाश एक अखण्ड द्रव्य है। उपचार से उसके लोकाकाश और अलोकाकाश दो भेद कहे जाते हैं।

प्रश्न १८५—लोकाकाश किसको कहते है ?

उत्तर—जितने आकाश में धर्म-अधर्म, काल, पुद्गल और जीव द्रव्य हैं वह लोकाकाश है।

प्रश्न १८६—अलोकाकाश कहां पर है ?

उत्तर—लोकाकाश के आगे मात्र अलोकाकाश है जो अमर्यादित है।

प्रश्न १८७—निश्चय काल किसको कहते हैं ?

उत्तर—वर्तना लक्षण निश्चय काल है। अर्थात् स्वयं परिणमन करते हुवे सब द्रव्यों को जो परिणमन में सहकारी (निमित्त मात्र कारण) है वह निश्चय काल है।

प्रश्न १८८—व्यवहार काल क्या है ?

उत्तर—जो द्रव्यों के परिवर्तन रूप है वह व्यवहार काल है।

प्रश्न १८९—व्यवहार काल किस प्रकार लक्ष्य में आता है ?

उत्तर—परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व इत्यादि से लक्ष्य में आता है।

प्रश्न १९०—काल द्रव्य कहां स्थित है ?

उत्तर—एक एक काल रूप अणु लोकाकाश के एक २ प्रदेश में रत्नों की राशि के समान निश्चय करके स्थित है।

प्रश्न १९१—अस्तिकाय कितने द्रव्य हैं ?

उत्तर—काल द्रव्य को छोड़ कर पांच द्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश अस्तिकाय हैं।

प्रश्न १९२—'काय' किस को कहते हैं ?

उत्तर—बहु प्रदेशी को काय कहते हैं।

प्रश्न १९३—अस्ति किसको कहते हैं ?

उत्तर—सत् रूप होने को अस्ति कहते हैं।

प्रश्न १९४—काल द्रव्य 'अस्तिकाय' है या नहीं ?

उत्तर—काल द्रव्य अस्ति तो है; किन्तु काय नहीं है।

प्रश्न १९५—द्रव्यों के प्रदेश बताओ ?

उत्तर—एक जीव में, धर्म अधर्म में लोक के बराबर असंख्यात प्रदेश हैं। आकाश में अनन्त प्रदेश हैं। पुद्गल में संख्यात्, असंख्यात, अनन्त प्रदेश हैं। काल में एक प्रदेश है।

प्रश्न १९६—संख्यात कहां से प्रारम्भ होता है ?

उत्तर—दो से ।

प्रश्न १९७—एक को संख्यात कहते हैं या नहीं ?

उत्तर—नहीं ! जैन धर्म में संख्या दो से प्रारम्भ होती है ।

प्रश्न १९८—एक प्रदेशी को क्या कहते है ?

उत्तर—एक प्रदेशी को अप्रदेशी कहते हैं । काल अप्रदेशी है ।

प्रश्न १९९—पुद्गल का एक अणु अप्रदेशी क्यों नही ?

उत्तर—एक प्रदेश वाला भी पुद्गल का परमाणु नाना स्कंध प्रदेशों का कारण होने से उपचार से बहुप्रदेशी ही श्री सर्वज्ञ देव ने कहा है ।

प्रश्न २००—प्रदेश का लक्षण क्या है ?

उत्तर—जितना आकाश अविभागी पुद्गल परमाणु से रोका जाय उसको प्रदेश कहते हैं । यह द्रव्यों के नापने का माप है ।

प्रश्न २०१—आकाश के एक प्रदेश की कितनी सामर्थ्य है ?

उत्तर—वह समस्त अणुओं को स्थान देने में समर्थ है (निमित्त मात्र कारण हो सकता है) ।

प्रश्न २०२—अजीव द्रव्य के जानने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—यह जगत् की स्वतः सिद्ध वस्तु है । उसमें राग, द्वेष, मोह छोड़ कर उसका ज्ञाता द्रष्टा बनना चाहिये (श्रीपंचास्तिकाय गाथा १०३, १०४) ।

## परिशिष्ट

परिणामि[१] जीव[२]-मुत्तं[३], सपदेसं[४] एय[५]-खेत्त[६]-किरिया[७] य ।
णिच्चं[८] कारण[९] कत्ता[१०], सव्वगदमिदरं[११] हि यपवेसे[१२] ॥१॥
दुण्णि[१] य एयं[२] एयं[३], पंच[४] त्तिय[५] एय[६] दुण्णि[७] चउवरो[८] य ।
पंच[९] य एय[१०] एयं[११], एदेसं एय[१२] उत्तवं णेयं ॥२॥

(युग्मम् 'वृहद्द्रव्यसंग्रह से)

अर्थ—(१) छह द्रव्यों में से परिणामी द्रव्य जीव और पुद्गल ये दो हैं (नैमित्तिक परिणमन की अपेक्षा यह बात है) । (२) चेतन

द्रव्य एक जीव है। (३) मूर्तिमान् एक पुद्गल है। (४) वहुत प्रदेश सहित जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश ये पाँच द्रव्य हैं। (५) एक एक संख्या वाले धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन द्रव्य हैं। (६) क्षेत्रवान् एक आकाश द्रव्य है। (७) क्रिया सहित जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य हैं। (८) नित्य द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चार हैं। (९) कारण द्रव्य पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच हैं। (१०) कर्त्ता द्रव्य एक जीव है। (११) सर्वगत (सर्व व्यापक) द्रव्य एक आकाश है। (१२) ये छहों द्रव्य एक दूसरे में प्रवेश रहित हैं।

सामान्य अजीव द्रव्य का निरूपण समाप्त हुवा

## दूसरा अध्याय

### जीव अजीव के विशेषों (नैमित्तिक पर्यायों) का निरूपण

(सूत्र २८ से ३८ तक ११)

**आस्रवादि का लक्षण तथा उनके कहने की प्रतिज्ञा**

आसव वंधण संवर, णिज्जर मोक्खो सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा, तेवि समासेण पभणामो ॥२८॥

आस्रववन्धनसंवरनिर्जरमोक्षाः सपुण्यपापाः ये।
जीवाजीवविशेपाः तान् अपि समासेन प्रभणामः ॥२८॥

सूत्रार्थ—आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप ये, जो जीव और अजीव के विशेष (नैमित्तिक पर्यायें) हैं उनको भी संक्षेप से हम कहते हैं।

**भावास्रव द्रव्यास्रव का स्वरूप**

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥

आस्रवति येन कर्म परिणामेन आत्मनः सः विज्ञेयः।
भावास्रवःजिनोक्तः कर्मास्रवणं परः भवति ॥२९॥

सूत्रार्थ—आत्मा के जिस परिणाम से कर्म आता है वह परिणाम श्री जिनेन्द्रदेव का कहा हुवा भावास्रव जानना चाहिये और कर्मों का आना दूसरा अर्थात् द्रव्यास्रव है।

भावास्रव के भेद

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओऽथ विण्णेया ।
पणपणपणदस तिय चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादयःअथ विज्ञेयाः ।
पंच पंच पंचदश त्रयःचत्वारः क्रमशः भेदाः तु पूर्वस्य ॥३०॥

सूत्रार्थ—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोधादिक कषाय भावास्रव जानने चाहियें। क्रम से पाँच, पाँच, पन्द्रह, तीन और चार तो पहले के अर्थात् भावास्रव के भेद हैं।

द्रव्यास्रव के भेद

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।
दव्वासवो स णेयो, अणेयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥

ज्ञानावरणादीनां योग्यं यत् पुद्गलं समास्रवति ।
द्रव्यास्रवः सः ज्ञेयः अनेकभेदः जिनाख्यातः ॥३१॥

सूत्रार्थ—ज्ञानावरणादि के योग्य जो पुद्गल आता है वह द्रव्यास्रव जानना चाहिये। वह श्री जिनेन्द्रदेव का कहा हुवा अनेक भेद रूप है।

प्रमाण—श्रीपंचास्तिकाय गा. १३५ से १४० तक।

भाव बंध और द्रव्य बंध का स्वरूप

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं, अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥३२॥

बध्यते कर्म येन तु चेतनभावेन भावबन्धः सः।
कर्मात्मप्रदेशानां अन्योन्यप्रवेशनं इतरः ॥३२॥

सूत्रार्थ—जिस चेतन भाव से कर्म बंधता है वह भाव; भाव बन्ध है। और कर्म और आत्मा के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश अर्थात् विशेष संबन्ध बंध, दूसरा अर्थात् द्रव्य बन्ध है।

भाव बन्ध और द्रव्य बन्ध के भेद

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बन्धो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात् तु चतुर्विधःवन्धः।
योगात् प्रकृतिप्रेदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतःभवतः ॥३३॥

सूत्रार्थ—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से तो द्रव्य बन्ध चार प्रकार है। प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग से तथा स्थिति और अनुभाग बंध कषाय से होता है।

प्रमाण—श्रीपंचास्तिकाय नं० १४७ से १४९ तक।

भाव संवर और द्रव्य संवर का स्वरूप

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू।
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणे अण्णो ॥३४॥

चेतनपरिणामः यः कर्मणः आस्रवनिरोधने हेतुः।
सः भावसंवरः खलु द्रव्यास्रवरोधने अन्यः ॥३४॥

सूत्रार्थ—जो चेतन परिणाम कर्म के आस्रव के रोकने में कारण है वह (परिणाम) निश्चय से भावसंवर है। द्रव्य आस्रव के रुकने पर दूसरा अर्थात् द्रव्यसंवर है।

भाव संवर के भेद

तवसमिदीगुत्तीओ, धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेयं णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥

तपःसमितिगुप्तयः धर्मानुप्रेक्षाः परीपहजयः च।
चारित्रं वहुभेदं ज्ञातव्याः भावसंवरविशेषाः ॥३५॥

सूत्रार्थ—तप, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र, जो अनेक भेद रूप हैं, वे भाव संवर के भेद जानने चाहिये।

प्रमाण—श्री पंचास्तिकाय नं० १४१ से १४३ तक।

### निर्जरा का स्वरूप

जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गल जेण।
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

यथाकालेन तपसा च भुक्तरसं कर्मपुद्गलं येन।
भावेन सडति ज्ञेया तत्सडनं चेति निर्जरा द्विविधा ॥३६॥

सूत्रार्थ—विपाक समय के अनुसार और तप के द्वारा भोग लिया है फल जिसका ऐसा कर्म पुद्गल जिस भाव से खिरता है वह (भाव) भाव निर्जरा जनाना चाहिये और वह झड़ना द्रव्य निर्जरा है और वह निर्जरा इस प्रकार सविपाक और अविपाक दो भेद रूप है।

प्रमाण—श्री पंचास्तिकाय नं० १४४ से १४६ तक।

### मोक्ष का स्वरूप

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेयो स भावमुक्खो, दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो ॥३७॥

सर्वस्य कर्मणः यः क्षयहेतुः आत्मनः हि परिणामः।
ज्ञेयः सः भावमोक्षः द्रव्यविमोक्षः च कर्मपृथग्भावः ॥३७॥

सूत्रार्थ—आत्मा का जो परिणाम निश्चय से सब कर्मों के नाश का कारण है; वह (भाव) भाव मोक्ष जानना चाहिये और कर्म का पृथक् होना द्रव्य मोक्ष है।

प्रमाण—श्री पंचास्तिकाय नं० १५० से १५३ तक।

### पुण्य पाप का स्वरूप

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं, सुहाउ णाम, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

शुभाशुभभावयुक्ता:पुण्यं पापं भवन्ति खलु जीवाः।
सातं शुभायुः नाम गोत्रं पुण्यं पराणि पापं च ॥३८॥

सूत्रार्थ—शुभ अशुभ भाव से युक्त जीव वास्तव में पुण्य पाप रूप होते हैं। सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, उच्च गोत्र द्रव्य पुण्य हैं और शेष (असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र और चार घातिकर्म) द्रव्य पाप हैं।

भावार्थ—यहाँ ऐसा भाव है कि शुभ अशुभ भाव भी द्रव्य का निज परिणमन ही है जीव स्वयं शुभ अशुभ भाव रूप परिणमन करता है (श्री प्रवचनसार गाथा ८, ९, ४६, १८६)।

प्रमाण—श्री पंचास्तिकाय गा. १३१ से १३४ तक।

## प्रश्नोत्तर

प्रश्न २०३—पर्याय किसको कहते हैं ?

उत्तर—"गुणविकाराः पर्यायाः" गुणों के विकार को–विशेष कार्य को–परिणमन को–पर्याय कहते हैं।

प्रश्न २०४—वे पर्यायें कितनी हैं ?

उत्तर—सात–आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप। जो जीव में होती हैं उनको भावास्रव, भावबन्ध, भावसंवर, भावनिर्जरा भाव मोक्ष, भाव पुण्य, भाव पाप कहते हैं और जो पुद्गल में होती हैं उनको द्रव्यास्रव, द्रव्यबंध, द्रव्यसंवर, द्रव्यनिर्जरा, द्रव्यमोक्ष, द्रव्यपुण्य और द्रव्य पाप कहते हैं।

प्रश्न २०५—भावास्रवादि का स्वरूप कहो ?

उत्तर—(१) आत्मा के जिन भावों के निमित्त से कर्म आते हैं, उन भावों को भावास्रव कहते हैं। (२) आत्मा के जिन भावों के निमित्त से कर्म बंधते हैं; उन भावों को भाव-बन्ध कहते हैं। (३) आत्मा के जिन भावों के निमित्त से कर्म रुकते हैं; उन भावों को भाव-

संवर कहते हैं। (४) आत्मा के जिन भावों के निमित्त से कर्म झड़ते हैं उन भावों को भाव-निर्जरा कहते हैं। (५) आत्मा के जिन भावों के निमित्त से सब कर्म नाश हो जाते हैं उन भावों को भाव-मोक्ष कहते हैं।

प्रश्न २०६—द्रव्यास्रवादि का स्वरूप कहो ?

उत्तर—(१) ज्ञानावरणादि कर्मों के होने योग्य पुद्गल द्रव्य का आना द्रव्यास्रव है। (२) कर्म और आत्मा के प्रदेशों का आपस में बंधना अर्थात् विशेष सम्बन्ध बन्ध होना द्रव्य-बन्ध है। (३) कर्मों का रुकना द्रव्य-संवर है। (४) कर्मों का झड़ना द्रव्य-निर्जरा है। (५) सब कर्मों का नाश होना द्रव्य-मोक्ष है।

प्रश्न २०७—भावास्रव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पाँच-मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

प्रश्न २०८—भावास्रव के अवान्तर भेद कितने है ?

उत्तर—३२ हैं। ५ मिथ्यात्व, ५ अविरति, १५ प्रमाद, ४ कषाय और ३ योग।

प्रश्न २०९—भाव बंध के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो—कषाय और योग।

प्रश्न २१०—द्रव्य बंध के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध।

प्रश्न २११—इन बन्धों का कारण क्या है ?

उत्तर—योग के निमित्त से प्रकृति, प्रदेश बन्ध होता है और कषाय के निमित्त से स्थिति, अनुभाग बन्ध होता है।

प्रश्न २१२—यहाँ कषाय का क्या अर्थ है ?

उत्तर—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद और कषाय को यहाँ अभेद-दृष्टि से कषाय कह दिया है।

प्रश्न २१३—तो फिर भावास्रव और भावबन्ध में क्या अन्तर है ?

उत्तर—उपादान दृष्टि से कुछ नहीं किन्तु निमित्त में एक समय में दो कार्य होते हैं एक कर्मों का आना दूसरा उनका बंधना । अतः निमित्त के दो कार्यों के कारणों के कारण भावास्रव और भावबंध कहे गये हैं ।

प्रश्न २१४—भावास्रव में ५ भाव और भाव बन्ध में दो भाव कहने का कारण क्या है जब वास्तव में दोनों जगह एक ही चीज है ?

उत्तर—इसका रहस्य निमित्त कार्य में छुपा है । मिथ्यात्व से १६ प्रकृति का आस्रव होता है । अनन्तानुबन्धी अविरति से २५ प्रकृति का, अप्रत्याख्यान अविरति से १० का, प्रत्याख्यान अविरति से ४ का, प्रमाद से ६ का, कषाय से ५८ का और योग से एक सातावेदनीय का । यह निमित्त का भिन्न भिन्न कार्य बिना उपादान भाव के ५ भेद किये समझ में नहीं आ सकता था । द्रव्य बंध तो चार ही प्रकार है और उन में भी २ बन्धों का कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद कषाय समान रूप से हैं अतः उसके लिये यहाँ अभेद दृष्टि से कषाय कहना पर्याप्त था । यही भावास्रव और भाव बन्ध के भेद का रहस्य है । अन्यथा तो जीव की विकार परिणति ही भावास्रव और भावबन्ध है इतना ही पर्याप्त था । आचार्यों की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है । उन्होंने प्रयोजन वश भेद का कथन किया है ।

प्रश्न २१५—भाव आस्रव के भेदों में कषाय शब्द का और भाव बन्ध के भेदों में कषाय शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर—भावास्रव के भेदों में तो कषाय शब्द का अर्थ अबुद्धिपूर्वक राग है जो संज्वलन के मन्द उदय से सातवें से दसवें गुणस्थान तक होता है और भाव बन्ध में कषाय शब्द का अर्थ मिथ्यदर्शन-अविरति, प्रमाद और कषाय है जो पहले से दसवें गुणस्थान तक होता है ।

प्रश्न २१६—द्रव्यास्रव और द्रव्य बंध में क्या अन्तर है ?

उत्तर—पुद्गल का कार्मण वर्गणाओं के रूप में आना जिनमें बन्ध होकर अनेक प्रकार परिणमन की योग्यता है; द्रव्यास्रव है और उनका अनेक प्रकार के ज्ञानावरणादि-कर्म बनकर जीव से बन्ध जाना द्रव्य बन्ध है। समय एक ही है, कार्य दो हैं। कारण कार्य का भेद है।

प्रश्न २१७—भावरसंवर के मूल भेद कितने है ?

उत्तर—सात–गुप्ति[1], समिति[2], धर्म[3], अनुप्रेक्षा[4], परीषहजय[5], चारित्र[6] और तप[7]।

प्रश्न २१८—भाव संवर के अवान्तर भेद कितने हैं ?

उत्तर—अनेक हैं–३ गुप्ति, ५ समिति, १० धर्म, १२ अनुप्रेक्षा, २२ परिषहजय, ५ चारित्र, १२ तप इत्यादि अनेक भेद प्रभेद हैं।

प्रश्न २१९—ये तप, समिति, गुप्ति आदि क्या है ?

उत्तर—अस्ति से कहो तो जीव की निश्चय सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान सम्यकचारित्र रूप शुद्ध निर्विकल्प परिणति के नाम हैं और नास्ति की अपेक्षा कहो तो भिन्न २ निवृत्ति की अपेक्षा इतने नाम है। भेद दृष्टि से (व्यवहार से) इतने नाम हैं।

प्रश्न २२०—भाव निर्जरा किसको कहते हैं ?

उत्तर—मुख्यतया तप भाव को अर्थात् शुद्धि की वृद्धि को कहते हैं।

प्रश्न २२१—द्रव्य निर्जरा के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो—सविपाक निर्जरा, अविपाक निर्जरा।

प्रश्न २२२—सविपाक निर्जरा किस को कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म परमाणु समय पर अपना फल देकर खिरते हैं उनको सविपाक-निर्जरा कहते हैं।

प्रश्न २२३—अविपाक निर्जरा किस को कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म परमाणु आत्मा के तप भाव का (शुद्धि का) निमित्त

पाकर समय से पहले अपना फल देकर खिरते हैं उनको अविपाक निर्जरा कहते हैं।

प्रश्न २२४—भाव-संवर और भाव-निर्जरा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—उपादान दृष्टि से कुछ नहीं। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्विकल्प परिणति का ही नाम भाव-निर्जरा है और उसी का नाम भाव संवर है। किन्तु निमित्त में अन्तर होने से दो नाम भिन्न २ हैं। उपादान की एक समय की शुद्धता से निमित्त में दो कार्य होते है, एक आगामी बंधने वाले कर्मो का रुकना; दूसरा पहिले बंधे हुवे कर्मो का खिरना। निमित्त के स्वतन्त्र भिन्न भिन्न दो कार्यों की अपेक्षा से उपादान के भी दो नाम हैं।

प्रश्न २२५—द्रव्यसंवर और द्रव्य निर्जरा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—नये बंधने वाले कर्मों का रुकना द्रव्यसंवर है जैसे मिथ्यात्व का अभाव होने पर १६ प्रकृति का बंध रुक जाता है। अविरति का अभाव होने पर ३९ प्रकृति का बंध रुक जाता है। प्रमाद का अभाव होने पर ६ प्रकृति का बंध रुक जाता है। कषाय का अभाव होने पर ५८ प्रकृति का बंध रुक जाता है और योग का अभाव होने पर १ सातावेदनीय का बंध रुक जाता है। और द्रव्य-निर्जरा पहले बंधे हुवे सत्ता को प्राप्त कर्मों के झड़ने को कहते हैं। रुकने वाले कर्म परमाणु दूसरे हैं झड़ने वाले कर्म परमाणु दूसरे हैं, बड़ा अन्तर है।

प्रश्न २२६—भाव संवर में गुप्ति आदि ७ भाव हैं और भाव निर्जरा में एक तप भाव है इसका क्या कारण है ?

उत्तर—शुद्धि का नाम भावसंवर है। शुद्धि की वृद्धि का नाम भावनिर्जरा है। इसलिये भाव संवर में तो समिति, गुप्ति आदि ७ लिये हैं किंतु भाव निर्जरा में मुख्यतया तप लिया है। तप-वृद्धि को प्राप्त शुद्धोपयोग का नाम है, निर्जरा में इसकी मुख्यता है।

२२७—भाव-मोक्ष कौनसा भाव है ?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पूर्णता वह भाव-मोक्ष है। ९ क्षायिक भावों से आशय है; जिनको ९ लब्धियाँ भी कहते हैं।

२२८—द्रव्यमोक्ष क्या है ?

उत्तर—आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्मणवर्गणा, और तैजस वर्गणा का जीव से पूर्णरूप से पृथक् होना—जो चौदहवें-गुणस्थान के अन्त में होता है—द्रव्य-मोक्ष है।

प्रश्न २२९—द्रव्य निर्जरा और द्रव्य-मोक्ष मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—सत्ता के कर्मों का एकदेश खिरना द्रव्य-निर्जरा है, पूर्ण खिरना द्रव्य मोक्ष है।

प्रश्न २३०—भाव-निर्जरा और भाव-मोक्ष में क्या अन्तर है ?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अपूर्णता का नाम भाव निर्जरा है और पूर्णता होने पर भाव-मोक्ष नाम हो जाता है।

प्रश्न २३१—पुण्य जीव कौन हैं ?

उत्तर—जो जीव शुभ-भावों से युक्त हैं वे जीव-पुण्य-जीव हैं।

प्रश्न २३२—पाप जीव कौन हैं ?

उत्तर—जो जीव अशुभ-भावों से युक्त हैं वे जीव-पाप जीव हैं।

प्रश्न २३३—द्रव्य पुण्य क्या है ?

उत्तर—सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, ऊंच गोत्र ये चार मूल कर्म अथवा इनकी उत्तर ६८ प्रकृतियाँ द्रव्य-पुण्य हैं।

प्रश्न २३४—द्रव्य पाप क्या है ?

उत्तर—असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र तथा ४ घाति कर्म ये मूल कर्म अथवा इनकी उत्तर १०० प्रकृतियाँ द्रव्य पाप है।

## सार

प्रश्न २३५—आस्रव, बंध, पुण्य, पाप क्या है ?

उत्तर—ये जीव की योग; कषाय रूप विभाव पर्याय है।

प्रश्न २३६—संवर निर्जरा क्या है ?

उत्तर—जीव की एक देश शुद्ध पर्याय हैं।

प्रश्न २३७—मोक्ष क्या है ?

उत्तर—जीव की पूर्ण शुद्ध पर्याय हैं।

प्रश्न २३८—इन आस्रवादि ७ तत्त्वों के जानने का क्या लाभ है ?

उत्तर—इन से आत्मा के परिणामों का ज्ञान होता है। आस्रव बन्ध, पुण्य, पाप के परिणाम हेय हैं, दुःख रूप हैं, बन्धकारक हैं। संवर, निर्जरा के परिणाम सुख रूप हैं, बंध का नाश करने वाले हैं। मोक्ष का परिणाम पूर्ण सुखरूप है। जीव को अनादि काल से चली आई विभाव परिणति को छोड़कर स्वभाव-परिणति को अंगीकार करना चाहिये यही इनके जानने का फल है।

प्रश्न २३९—स्वभाव परिणति के प्रकट करने का क्या उपाय है ?

उत्तर—त्रिकाली ज्ञायक शुद्ध जीव द्रव्य का आश्रय—(ज्ञान-श्रद्धान और आचरण) यही स्वभाव पर्याय प्रकट करने का उपाय है। और यही विभाव-पर्याय को नाश करने का उपाय है। दोनों कार्य अस्ति नास्ति से एक ही समय में होते हैं।

## ७ तत्त्वों का स्वरूप

(१) जीव—अर्थात् आत्मा—वह सदैव ज्ञाता स्वरूप, पर से भिन्न और त्रिकाल स्थायी (रहने वाला है)। पंचम पारिणामिक भाव को जीव तत्त्व कहते हैं।

(२) अजीव—जिसमें चेतना (ज्ञातृत्व) नहीं है, ऐसे द्रव्य पाँच हैं। उन में धर्म, अधर्म, आकाश और काल—यह चार अरूपी हैं और पुद्गल रूपी—स्पर्श, रस, गंध और वर्ण सहित है।

(३) आस्रव—जीव में जो विकारी शुभाशुभभावरूप अरूपी अवस्था होती है वह 'भावास्रव' है और उस समय नवीन कर्म योग्य

रजकणों का स्वयं (स्वतः) आना (आत्मा के साथ एक क्षेत्र में आना) वह 'द्रव्यास्रव' है, (उसमें जीव की अशुद्ध पर्याय निमित्तमात्र है)। पुण्य और पाप दोनों आस्रव और बन्ध के भेद हैं।

A. पुण्य—दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादि के शुभभाव जीव को होते हैं। वे अरूपी अशुद्ध भाव हैं; वे "भावपुण्य" हैं। उस समय सातावेदनीय शुभनाम आदि कर्मयोग्य परमाणुओं का समूह स्वयं (स्वतः) एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध रूप जीव के साथ बंधता है वह 'द्रव्यपुण्य' है। (उस में जीव का अशुद्धभाव निमित्तमात्र है)।

B पाप—मिथ्यात्व, हिंसा, असत्य, चोरी, अव्रतादि के अशुभ भाव 'भाव पाप' हैं। उस समय ज्ञानावरणीय, मोहनीय, असातावेदनीय, आदि कर्मयोग्य पुद्गल स्वयं स्वतः जीव के साथ बंधते हैं वह 'द्रव्यपाप' है, (उसमें जीव का अशुभ भाव निमित्तमात्र है)। [परमार्थतः (वास्तव में) पुण्य-पाप (शुभाशुभभाव) आत्मा को अहितकर हैं, आत्मा की क्षणिक अशुद्ध अवस्था हैं। सम्यग्दृष्टि को पुण्यभाव से आँशिक संवर-निर्जरा होते हैं यह मान्यता मिथ्या है। द्रव्य पुण्य-पाप आत्मा का हित-अहित नहीं कर सकते क्योंकि वे पर द्रव्य हैं। देखो, पं० श्रीराजमल जी कृत समयसार कलश टीका पृ० ११२ कलश ११०]।

(४) बन्ध—आत्मा के अज्ञान, राग-द्वेष, पुण्य-पापरूप विभाव में रुक जाना (अटक जाना) वह 'भाववंध, है और उस समय कर्मयोग पुद्गलों का स्वयं स्वतः जीव के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप से बंधना वह 'द्रव्यबंध' है (उस में जीव का अशुद्ध भाव निमित्त मात्र है)।

(५) संवर—पुण्यपापरूप अशुद्ध भाव को (आस्रव को) आत्मा के शुद्धभाव द्वारा रोकना वह 'भावसंवर' है और तदनुसार कर्मों का आना स्वयं स्वतः रुक जाये वह 'द्रव्यसंवर' है।

(६) निर्जरा—अखण्डानन्द शुद्ध आत्मस्वभाव लक्ष के वल से आँशिक शुद्धि की वृद्धि और अशुद्ध (शुभाशुभ इच्छारूप) अवस्था की

आँशिक हानि करना वह 'भावनिर्जरा' है; और उसका निमित्त पाकर जड़कर्म का अंशतः खिर जाना वह 'द्रव्यनिर्जरा' है।

(७) मोक्ष—अशुद्ध अवस्था का सर्वथा—सम्पूर्ण नाश होकर आत्मा की पूर्ण शुद्ध पर्याय का प्रकट होना वह 'भावमोक्ष' है और उस समय अपनी योग्यता से द्रव्यकर्मों का आत्मप्रदेशों से अत्यन्त अभाव होना वह 'द्रव्यमोक्ष' है।

सात तत्त्वों में प्रथम दो तत्त्व 'जीव और अजीव' यह द्रव्य हैं और अन्य पांच तत्त्व उनकी (जीव और अजीव की) संयोगी और वियोगी पर्यायें (विशेष अवस्थायें) है। आस्रव और बन्ध संयोगी पर्यायें हैं तथा संवर, निर्जरा और मोक्ष ये जीव अजीव की वियोगी पर्यायें हैं। जीव और अजीवतत्त्व 'सामान्य' हैं और अन्य पांच तत्त्व पर्यायें होने से 'विशेष' भी कहे जाते हैं। जीव की दशा को अशुद्ध में से शुद्ध करना है उसका नाम तो अवश्य ही प्रथम बतलाना चाहिये, इसलिये 'जीव' तत्त्व प्रथम कहा; फिर जिस ओर के लक्ष से अशुद्धता अर्थात् विकार होता है इसका नाम आना आवश्यक है, इसलिये 'अजीव' तत्त्व कहा। अशुद्ध दशा में कारणकार्य का ज्ञान करने के लिये 'आस्रव' और 'बन्ध' तत्त्व कहे हैं। इनके पश्चात् मुक्ति का कारण कहना चाहिये; और मुक्ति का कारण वही हो सकता है जो बन्ध और बन्ध के कारण से विपरीत प्रकार का हो; इसलिये आस्रव का निरोध हो वह 'संवर' तत्त्व कहा। अशुद्धता—विकार निकल जाने के कार्य को 'निर्जरा' तत्त्व कहा और जीव अत्यन्त शुद्ध हो जाये वह दशा 'मोक्ष' तत्त्व है।

## ७ तत्त्वों में उपादेय हेय पना

उपादेय तत्त्व—अक्षय अनंत सुख वह उपादेय है और उसका कारण मोक्ष है। मोक्ष का कारण संवर और निर्जरा है, उन का कारण विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावी निज आत्मस्वरूप का सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण लक्षण स्वरूप निश्चयरत्नत्रय है। उस निश्चय रत्नत्रय को

साधने की इच्छा रखने वाले जीव को व्यवहार रत्नत्रय क्या है वह समझकर परद्रव्य और राग से अपना लक्ष उठाकर निज आत्मा के त्रिकाली स्वरूप की ओर लक्ष करना चाहिये। ऐसा करने से निश्चय सम्यग्दर्शन प्रकट होता है और उसके बल से संवर, निर्जरा तथा मोक्ष प्रकट होता है; इसलिये ये तीन तत्त्व उपादेय हैं।

हेय तत्त्व—"आकुलता को उत्पन्न करने वाले ऐसे निगोद-नरकादि गतियों के दुःख तथा इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न हुवा कल्पित सुख वह हेय (छोड़ने योग्य) हैं; उसका कारण संसार है। उस संसार का कारण आस्रव और बन्ध—ये दो तत्त्व हैं; पुण्य-पाप दोनों बन्ध तत्त्व हैं; **उस आस्रव तथा बन्ध के कारण रत्नत्रय से विपरीत लक्षण के धारक ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये तीन हैं; इसलिये आस्रव और बन्ध—यह दो तत्त्व हेय हैं।**

## मिथ्यादृष्टि की ७ तत्त्वों में भूल

(१) जीव तत्त्व संबन्धी भूल—जीव तो त्रिकाल ज्ञान स्वरूप है; उसे वह 'अज्ञानवश' नहीं जानता और जो शरीर है सो मैं हूं, शरीर का कार्य मैं कर सकता हूं—ऐसा मानता है; शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ हो, वाह्य अनुकूल संयोगों से मैं सुखी और बाह्य प्रतिकूल संयोगों से दुःखी, मैं निर्धन, मैं धनवान, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं कुरूप, मैं सुन्दर—ऐसा मानता है; शरीराश्रित उपदेश और उपवासादि क्रियाओं में निजत्व (अपनापन) मानता है। इस प्रकार अज्ञानी जीव पर को स्व स्वरूप मानकर अपने स्वतत्त्व का (निजतत्त्व का) इनकार करता है; इसलिये वह जीवतत्व संबन्धी भूल करता है।

(२) अजीव तत्त्वसम्बन्धी भूल—मिथ्या अभिप्रायवश जीव ऐसा मानता है कि शरीर उत्पन्न होने से मेरा जन्म हुवा, शरीर का नाश होने से मैं मर जाऊंगा; धन, शरीर इत्यादि जड़ पदार्थों में परिवर्तन होने से अपने में इष्ट-अनिष्ट परिवर्तन मानना; शरीर की उष्ण अवस्था

होने पर मुझे बुखार आया; भूख प्यास आदिरूप अवस्था होने पर मुझे भूख प्यास लग रहे हैं—ऐसा मानना; शरीर कट जाने पर मैं कट गया—इत्यादिरूप अजीव की अवस्था को अज्ञानी जीव अपनी अवस्था मानता है,—यह उसकी अजीव तत्त्व सम्बन्धी भूल है; क्योंकि वह अजीव को जीव मानता है। इसमें अजीव को स्वतत्त्व (जीवत्त्व) मानकर वह अजीव तत्व को अस्वीकार करता है। जैन शास्त्रों में कहे हुवे जीव के त्रस-स्थावर आदि भेदों को, गुणस्थान-मार्गणा आदि भेदों को, जीव-पुद्गलादि के भेदों को तथा वर्णादि भेदों को तो जीव जानता है किन्तु "अध्यात्म शास्त्रों में भेदविज्ञान के कारणभूत और वीतरागदशा होने के कारणभूत वस्तु का जैसा निरूपण किया है वैसा जो नहीं जानता, उसे जीव अजीव तत्व की यथार्थ श्रद्धा नहीं है" ......जिस प्रकार अन्य मिथ्यादृष्टि निर्धार के बिना पर्याय बुद्धि से जानपना में या वर्णादि में अहंबुद्धि रखते हैं, उसी प्रकार यह भी आत्माश्रित ज्ञानादि में तथा शरीराश्रित उपदेश-उपवासादि क्रियाओं में अपनत्व मानता है। पुनश्च, कभी कभी शास्त्रानुसार सच्ची बात भी बतलाता है, किन्तु वहां अन्तरंग निर्धाररूप श्रद्धान नहीं है, इसलिये जिस प्रकार नशेबाज मनुष्य माता को माता भी कहे तथापि वह सयाना नहीं है, उसी प्रकार इसे भी सम्यग्दर्शन वाला नहीं कहते। पुनश्च, जिस प्रकार कोई दूसरे को दूसरे से भिन्न बतलाता हो उसी प्रकार यह आत्मा और शरीर की भिन्नता का प्ररूपण करता है; परन्तु मैं इन शरीरादिक से भिन्न हूं—ऐसा भाव भासित नहीं होता: और पर्याय में जीव-पुद्गल के परस्पर निमित्त से अनेक क्रियायें होती हैं उन सब को दो द्रव्यों के मिलाप से उत्पन्न मानता है, परन्तु यह जीव की क्रिया है, इसमें पुद्गल निमित्त हैं, तथा यह पुद्गल की क्रिया है, इसमें जीव निमित्त है, इस प्रकार भिन्न भिन्न भाव भासित नहीं होता—इत्यादि भाव भासित हुवे बिना उसे जीव-अजीव का सच्चा श्रदानी नहीं कहा जा सकता क्योंकि जीव अजीव के जानने का प्रयोजन तो यही था, जो इसे नहीं हुवा।

(३) आस्रव तत्त्व सम्बन्धी भूल—मिथ्यात्व, राग-द्वेष, शुभाशुभ भाव आस्रव हैं। वे भाव आत्मा को प्रकटरूप से दुःख देने वाले हैं; परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव उन्हें हितरूप मानकर उनका निरन्तर सेवन करता है। यह उसकी आस्रवतत्त्व सम्बन्धीभूल है। उस आस्रव तत्त्व में जो हिंसादिरूप पापास्रव है उसे तो हेय जानता है तथा अहिंसारूप पुण्यास्रव है उसे उपादेय मानता है; चूंकि ये दोनों कर्म बन्ध के ही कारण हैं; इस लिये उनमें उपादेयपना मानना ही मिथ्यादर्शन है। हिंसा में मारने की बुद्धि होती है, किन्तु जीव की आयु पूरी हुए विना वह नहीं मरता, और अपनी द्वेषपरिणति से स्वयं ही पापबंध करता है, तथा अहिंसा में रक्षा करने की बुद्धि होती है, किन्तु उनके आयु-अवशेष के बिना नहीं जीता, मात्र, अपनी प्रशस्त राग परिणति से स्वयं ही पुण्यबन्ध करता है। इस प्रकार थे दोनों हेय हैं, और जहाँ वीतराग होकर ज्ञाता दृष्टा रूप प्रवर्तन करे वहाँ निर्बन्धता है, इसलिये वह उपादेय है। लेकिन ऐसी दशा न हो तब तक प्रशस्त राग रूप प्रवर्तन करो, परन्तु श्रद्धान तो ऐसा रक्खो कि यह भी बंध का कारण है—हेय है, यदि श्रद्धान में उसे मोक्षमार्ग मानें तो वह मिथ्यादृष्टि है। पुनश्च, राग-द्वेष-मोह रूप जो आस्रव भाव है उसका नाश करने की तो (उसे) चिन्ता नहीं है और बाह्य क्रिया तथा बाह्य निमित्तों को मिटाने का उपाय रखता है, किन्तु उनके मिटाने से कहीं आस्रव नहीं मिटते अंतरंग अभिप्राय में मिथ्यात्वादिरूप रागादिभाव हैं वही आस्रव है। उसे नहीं पहचानता इसलिये आस्रव तत्त्व का भी उसे सच्चा श्रद्धान नहीं है।

(४) बंध तत्त्व सम्बन्धी भूल—जैसी सोने की बेड़ी वैसी ही लोहे की बेड़ी—दोनों बन्धन-कारक हैं; उसी प्रकार पुण्य और पाप दोनों जीव को बन्धन कर्ता है; किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा न मानकर पुण्य को अच्छा—हितकारी मानता है। तत्त्वदृष्टि से तो पुण्य-पाप दोनों अहितकर ही हैं; परन्तु अज्ञानी वैसा नहीं मानता;—यह उस की बंध तत्त्व सम्बन्धी भूल है।

(५) संवरतत्त्व सम्बन्धी भूल—निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र जीव को हितकारी हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव उन्हें कष्टदायक मानता है। यह उसकी संवर तत्त्व सम्बन्धी भूल है।

(६) निर्जरा तत्त्व सम्बन्धी भूल—आत्मा में एकाग्र होकर शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की इच्छा रोकने से निजात्मा की शुद्धि का प्रतपन होना वह तप है, और उस तप से निर्जरा होती है। ऐसा तप सुख दायक है, परन्तु अज्ञानी उसे क्लेशदायक मानते हैं और आत्मा की ज्ञानादि अनन्त शक्तियों को भूलकर पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख मान कर उस में प्रीति करते हैं। यह निर्जरा तत्त्व सम्बन्धी भूल है। बाल-तप से मोक्षमार्ग की कारणरूप निर्जरा मानना भी भूल है।

(७) मोक्षतत्त्व सम्बन्धी भूल—आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा का प्रगट होना वह मोक्ष है; उसमें आकुलता का अभाव है—पूर्ण स्वाधीन निराकुलता वह सुख है; परन्तु अज्ञानी ऐसा न मान कर शरीर में, राग-रंग में ही सुख मानते हैं। मोक्ष में देह, इन्द्रिय, खान—पान, मित्रादि कुछ भी नहीं होता, इसलिये अज्ञानी अतीन्द्रिय मोक्ष सुख को नहीं मानता। यह उसकी मोक्ष तत्त्व सम्बन्धी भूल है। इस प्रकार सात तत्त्वों की भूल के कारण अज्ञानी जीव अनन्तकाल से संसार में भटक रहा है।

## तीसरा अध्याय

## मोक्ष के कारण का निरूपण

(सूत्र ३९ से ४६ तक ८)

### मोक्षकारण

सम्मद्दंसणणाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा, णिच्छयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चरणं मोक्षस्य कारणं जानीहि।
व्यवहारात् निश्चयतः तत्त्रिकमयः निजः आत्मा ॥३९॥

अर्थ—व्यवहार से (अर्थात् पर्यायार्थिक नय के कथन से) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र (इन पर्यायों को) मोक्ष का कारण जान। निश्चय से (अर्थात् द्रव्यार्थिक नय के कथन से) उन तीनमय अपना आत्मा (उन तीन पर्यायों से तन्मयरूप से वर्तता हुवा एक अखण्ड ज्ञाता रूप अपना आत्म द्रव्य सदा) मोक्ष का कारण जान।

भावार्थ—इस सूत्र की रचना तथा भाव ठीक वही है जो श्री तत्त्वार्थसार के सूत्र नं० २१ का है या श्रीप्रवचनसार गा. २४२ का है। अतः इस विषय को विशद रूप से स्पष्ट करने के लिये हम आगे श्रीतत्त्वार्थसार का वह पूरा प्रकरण दे रहे हैं जिसके पढ़ने से इस सूत्र का भाव स्पष्ट झलक जायेगा।

उन तीनमय निज आत्मा के मोक्ष का कारण होने में हेतु

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुइत्तु, अण्णदवियह्मि ।
तह्मा तत्तियमइउ होदि हु मुक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

रत्नत्रयं न वर्त्तते आत्मानं मुक्त्वा अन्यद्रव्ये ।
तस्मात् तत्त्रिकमयः भवति खलु मोक्षस्य कारणं आत्मा ॥४०॥

सूत्रार्थ—क्योंकि रत्नत्रय आत्मा को छोड़ कर अन्य पाँच द्रव्यों में नहीं रहता है, इसलिये उनतीनमय आत्मा निश्चय से मोक्ष का कारण है।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

जीवादिसद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि ॥४१॥

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं रूपं आत्मनः तत् तु ।
दुरभिनिवेशविमुक्तं ज्ञानं सम्यक् खलु भवति सति यस्मिन् ॥४१॥

सूत्रार्थ—जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। और वह आत्मा का रूप (शुद्ध भाव) है। जिस के होने पर निश्चय करके ज्ञान

विपरीताभिनिवेश रहित सम्यक् हो जाता है।

भावार्थ—भूतार्थ से जाने हुवे ही नौ तत्त्व सम्यग्दर्शन हैं क्योंकि शुद्ध नय से जाने हुवे नौ तत्त्वों में रहने वाले अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव हो सकता है (श्री समयसार जी गाथा १३) इसका तात्पर्य यह है कि अपनी शुद्ध आत्मा के निर्विकल्प अनुभवका नाम ही सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, स्वभाव पर्याय है, विभाव पर्याय है, निर्विकल्प पर्याय है या सविकल्प पर्याय है। शुद्ध है या अशुद्ध है। राग रूप है या वीतरागरूप है तो कहते हैं कि वह आत्माका रूप है अर्थात् आत्मद्रव्यके आश्रय से प्रकट होने वाली शुद्ध पर्याय है। रूप शब्द इस बात का द्योतक है कि इसमें विकल्प (राग) का ग्रहण नहीं है क्योंकि राग आत्मा का रूप नहीं है। अब यह शङ्का हो सकती है कि ऐसे सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति से क्या लाभ है तो उत्तर देते हैं कि जीव का मिथ्यात्व अवस्था में जो ज्ञान विपरीत अभिप्राय सहित कार्य कर रहा था वह सीधा होकर विपरीताभिनिवेश से रहित सम्यक् रूप कार्य करने लगता है अर्थात् स्व पर कोनौ पदार्थो को—हेय उपादेय और ज्ञेय को ठीक २ जानने लगता है। यहां सम्यग्दर्शन से आशय निश्चय सम्यग्दर्शन से है। व्यवहार रूप विकल्प का या व्यवहार श्रद्धा का इस सूत्र में रंच मात्र भी ग्रहण नहीं है।

प्रश्न २४०—सूत्र में तो नौ तत्त्वो के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है और आप शुद्ध आत्मा के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

उत्तर—यहां भूतार्थ नय से नौ तत्त्वों के श्रद्धान की बात है और भूतार्थ नय से नौ तत्त्वों का श्रद्धान ही जब कहलाता है जबकि उन में रहने वाली शुद्ध आत्मा का आश्रय लिया जाये। शुद्ध आत्मा का आश्रय कहो या तत्त्वार्थ श्रद्धान कहो एक ही बात है। बिना शुद्ध आत्मा के आश्रय के नौ तत्त्वों का श्रद्धान, श्रद्धान ही नहीं है किंतु श्रद्धानाभास है। मिथ्याश्रद्धान है या व्यवहार श्रद्धान है।

प्रश्न २४१—सूत्र में व्यवहार सम्यग्दर्शन का निरूपण है या निश्चय सम्यग्दर्शन का ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का होता है। उसमें दो भेद नहीं होते। इसलिये सम्यग्दर्शन का यह एक ही सूत्र है दो नहीं।

प्रश्न २४२—यह सविकल्प सम्यग्दर्शन का निरूपण है या निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन निर्विकल्प ही होता है। सविकल्प सम्यग्दर्शन कोई वस्तु ही नहीं। निर्विकल्प का ही दूसरा नाम निश्चय है। विकल्प रूप परिणमन चारित्र गुण का तो हुवा करता है। श्रद्धा गुण का नहीं। इस विषय की विशेष जानकारी के लिये श्रीपंचाध्यायी छठी पुस्तक का अभ्यास करें।

प्रश्न २४३—ग्रन्थकार ने यह सूत्र किस आगम आधार से रचा है ?

उत्तर—यह सूत्र ज्यों का त्यों श्रीपुरुषार्थसिद्धयुपाय का सूत्र नं० २२ है। वह इस प्रकार है। आप मिलाकर देख लें—

> जीवाजीवादिनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्तव्यम् ।
> श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ॥२२॥

अर्थ—जीव, अजीव आदि नौ तत्वों का श्रद्धान सदा करना चाहिये। वह श्रद्धान विपरीत अभिप्राय से रहित है। वह "आतमरूप" है। आत्मरूप राग को नहीं कहते। शुद्ध भाव को ही कहते हैं।

प्रश्न २४४—तिर्यञ्चादि जो अल्पज्ञान वाले है उन्हें, और केवली तथा सिद्ध भगवान को निश्चय सम्यग्दर्शन समान ही होता है क्या ?

उत्तर—हाँ; तिर्यंच और केवली भगवान् में ज्ञानादिक की हीनाधिकता होने पर भी उन में सम्यग्दर्शन तो समान ही कहा है। जैसा सात तत्त्वों का श्रद्धान छद्मस्थ को होता है वैसा ही केवली तथा सिद्ध भगवान् को भी होता है। छद्मस्थ को श्रुतज्ञान के अनुसार प्रतीति होती है उसी प्रकार केवली और सिद्ध भगवान् को केवलज्ञानानु-

सार ही प्रतीति होती है। मूलभूत जीवादिक के स्वरूप का श्रद्धान जैसा छद्मस्थ को होता है वैसा ही केवली को तथा सिद्धभगवान् को होता है।

प्रश्न २४५—व्यवहार सम्यक्त्व किस गुण की पर्याय है ?

उत्तर—सत् देव गुरु शास्त्र, छह द्रव्य और सात तत्त्वों की श्रद्धा का राग—विकल्प होने से वह चारित्र गुण की अशुद्ध पर्याय है किन्तु वह श्रद्धा गुण की पर्याय नहीं है क्योंकि उसकी तो मिथ्यादर्शन और निश्चय सम्यग्दर्शन—ये दो ही पर्यायें होती हैं। व्यवहार सम्यक्त्व इन दो में से एक भी नहीं है।

प्रश्न २४६—सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जिस गुण की निर्मल दशा प्रगट होने से अपने शुद्धात्मा का प्रतिभास हो, अखण्ड ज्ञायक स्वभाव की प्रतीति हो (२) सच्चे देव-गुरु-धर्म में दृढ़ प्रतीति हो (३) जीवादि सात तत्त्वों की यथार्थ प्रतीति हो (४) स्वपर का श्रद्धान हो (५) आत्मश्रद्धान हो, उसे सम्यक्त्व कहते हैं। इन लक्षणों से अविनाभाव सहित जो श्रद्धा होती है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है (उस पर्याय का धारक सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण है, सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन उसकी पर्यायें हैं।

प्रश्न २४७—निश्चय और व्यवहार ऐसे दो प्रकार के सम्यग्दर्शन हैं ?

उत्तर—नहीं, सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार है—दो प्रकार का नहीं है; किन्तु उसका कथन दो प्रकार से है। जहाँ सच्चे सम्यग्दर्शन का निरूपण किया है वह निश्चय-सम्यग्दर्शन है, तथा जो सम्यग्दर्शन तो नहीं है किन्तु सम्यग्दर्शन का निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचार से सम्यग्दर्शन कहा जाता है। किन्तु व्यवहार सम्यग्दर्शन को सच्चा सम्यग्दर्शन माने तो वह श्रद्धा मिथ्या है; क्योंकि निश्चय और व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है अर्थात् सच्चा निरूपण वह निश्चय और उपचार निरूपण वह व्यवहार है। निरूपण की

अपेक्षा से सम्यग्दर्शन के दो प्रकार कहे है किन्तु एक निश्चय सम्यग्दर्शन है और एक व्यवहार सम्यग्दर्शन है—इस प्रकार दो सम्यग्दर्शन मानना वह मिथ्या है।

आवश्यक सूचना—३६ से ४६ तक के ये सूत्र तथा इनके स्पष्टीकरण रूप श्री तत्त्वार्थसार के ये सूत्र वहुत उपयोगी हैं। मुमुक्षु सावधानता से अभ्यास करें।

### सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मण्णाणं, सायारमणेयभेयं तु ॥४२॥

संशयविमोहविभ्रमविवर्जितं आत्मपरस्वरूपस्य ।
ग्रहणं सम्यग्ज्ञानं साकारं अनेकभेदं च ॥४२॥

सूत्रार्थ—अपने और पर के स्वरूप का संशय, विपर्यय (विभ्रम) और अनध्यवसाय (विमोह) रहित जानना सम्यग्ज्ञान है। वह साकार है और अनेक भेद रूप है।

भावार्थ—यहाँ, पर ज्ञेयों के ज्ञान से कोई प्रयोजन नहीं है। उन का ज्ञान तो किसी समय सम्यग्ज्ञानी को भी अन्यथा हो जाता है। यहाँ तो "स्व" अर्थात् अपना शुद्ध ज्ञायक आत्मा और पर अर्थात् जीवादि ९ तत्त्व। उन के जानने में ज्ञानी को संशय, विपर्य्यय, और अनध्यवसाय नहीं होता। दूसरी बात यह है कि दर्शन निराकार (भेदरहित जानना) होता है और ज्ञान साकार (भेद सहित जानना) होता है। और उसकी सम्यक् मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल यह ५ पर्यायें होती हैं। यह भी निर्विकल्प पर्यायें हैं राग अंश का इन में भी ग्रहण नहीं है।

प्रश्न २४८—यह व्यवहार सम्यग्ज्ञान का सूत्र है या निश्चय का ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन की तरह ज्ञान भी एक ही प्रकार का होता है। इसमें व्यवहार निश्चय नहीं होता। अतः एक ही सूत्र रचा है दो नहीं।

प्रश्न २४९—सम्यग्ज्ञान सविकल्प होता है या निर्विकल्प ?

उत्तर—विकल्प का एक भेद अर्थ होता है। एक राग अर्थ होता है। ज्ञान भेद सहित अर्थात् साकार पदार्थों को जानता है और दर्शन भेद रहित (निराकार) जानता है इस अपेक्षा तो सभी ज्ञान साकार या सविकल्प होते हैं निराकार या निर्विकल्प कोई ज्ञान होता ही नहीं और विकल्प का दूसरा अर्थ जो राग है सो इस अपेक्षा सम्यग्ज्ञान राग रहित अर्थात् निर्विकल्प ही होता है सविकल्प होता ही नहीं क्योंकि राग चारित्र गुण का परिणमन है ज्ञान गुण का नहीं।

प्रश्न २५०—यह सूत्र किस आगम आधार से रचा गया है ?

उत्तर—यह सूत्र श्री पुरुषार्थसिद्धयुपाय सूत्र नं० ३५ के आधार से रचा गया है वह इस प्रकार है।

कर्तव्योऽध्यवसायः सदनेकान्तात्मकेषु तत्त्वेषु ।
संशयविपर्ययानध्यवसायविविक्तमात्मरूपं तत् ॥३५॥

अर्थ—सत् अनेकान्तात्मक तत्त्वों में जानपना करना चाहिये। वह जानपना संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित है और वह "आत्मरूप" है। आत्मरूप शुद्ध भाव को कहते हैं। ज्ञान में भी राग अंश का स्वीकार नहीं किया गया है। मात्र शुद्ध ज्ञान अंश को सम्यग्ज्ञान कहा है।

प्रश्न २५१—निश्चय सम्यग्ज्ञान और व्यवहार सम्यग्ज्ञान-ऐसा दो प्रकार का सम्यग्ज्ञान है ?

उत्तर—नहीं, सम्यग्ज्ञान कहीं दो प्रकार का नहीं है किन्तु उसका निरूपण दो प्रकार से है। जहाँ सच्चे सम्यग्ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहा है वह निश्चय सम्यग्ज्ञान है, किन्तु जो सम्यग्ज्ञान तो नहीं है परन्तु सम्यग्ज्ञान का निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचार से सम्यग्ज्ञान कहा जाता है, इसलिये निश्चय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मान कर उसका श्रद्धान अंगीकार करना चाहिये,

तथा व्यवहार नय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मान कर उसका श्रद्धान छोड़ना चाहिये ।

दर्शनोपयोग का स्वरूप

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समए ॥४३॥

यत्सामान्यं ग्रहणं भावनां नैव कृत्वा आकारम् ।
अविशेषयित्वा अर्थान् दर्शनं इति भण्यते समये ॥४३॥

सूत्रार्थ—पदार्थों में विशेषता न करके-पदार्थों का, जो आकार को (ग्रहण) न करके, निराकार जानना है वह दर्शन है ऐसा आगम में कहा गया है ।

भावार्थ—पिछले सूत्र में कहा था कि ज्ञान 'स्वपर' पदार्थों को साकार जानता है और इस सूत्र में कहते हैं कि दर्शन उन ही पदार्थों को निराकार जानता है । यहाँ और अगले सूत्र में दर्शन से आशय सम्यग्दर्शन का नहीं किन्तु दर्शनोपयोग का है ।

सूचना—दर्शनोपयोग कोई मोक्षमार्ग नहीं है किन्तु मोक्षमार्ग में इष्ट जो सम्यग्ज्ञान उस का अविनाभावी होने से इस का भी यहाँ निरूपण कर दिया है । इसमें सम्यक्, मिथ्या भी नहीं होता तो भी मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से यहाँ ज्ञानी के दर्शनोपयोग का ही अभिप्राय है ।

चेतावनी—कोई २ ऐसा मानते हैं कि दर्शन स्व को ही जानता है और ज्ञान पर को ही जानता है किन्तु ऐसा बिलकुल नहीं है । दर्शन और ज्ञान दोनों स्व और पर दोनों को जानते हैं । भेद केवल इतना ही है कि ज्ञान दोनों को साकार (भेदसहित) जानता है और दर्शन निराकार (भेद रहित) जानता है । इस विषय की जानकारी के लिये देखिये श्री-नियमसार अन्तिम उपयोग अधिकार प्रारम्भ की १३ गाथा नं० १५९

से १७१ तक तथा श्री चिद्विलास पन्ना १५ तथा २३ बहुत लाभदायक है।

### दर्शन और ज्ञान की उत्पत्ति का नियम

दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवउग्गा।
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥४४॥

दर्शनपूर्वं ज्ञानं छद्मस्थानां न द्वौ उपयोगौ।
युगपत् यस्मात् केवलिनाथे युगपत् तु तौ द्वौ अपि ॥४४॥

सूत्रार्थ—छदमस्थों (क्षायोपशमिक-ज्ञानियों) के दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है क्योंकि (उनके) एक साथ दोनों उपयोग नहीं होते। केवली नाथ (भगवान्) में तो वे दोनों उपयोग एक साथ ही होते हैं।

भावार्थ—छद्मस्थ जीवों के पहले दर्शनोपयोग होता है फिर ज्ञानोपयोग होता है। समय भेद है। केवली भगवान में दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग दोनों एक साथ ही होते हैं। समय भेद नहीं है।

### व्यवहार चारित्र का निरूपण

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणयादु जिणभणियं ॥४५॥

अशुभात् विनिवृत्तिः शुभे प्रवृत्तिः च जानीहि चारित्रम्।
व्रतसमितिगुप्तिरूपं व्यवहारनयात् तु जिनभणितम् ॥४५॥

सूत्रार्थ— अशुभ से विनिवृत्ति (छुटकारा) और शुभ में प्रवृत्ति (लगना) व्यवहार नय से चारित्र तू जान। वह व्यवहार चारित्र ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति ऐसे तेरह भेदरूप श्री जिनेन्द्रदेव द्वारा कहा गया है।

भावार्थ— ज्ञानी मुनियों के पाँच पापों का पूर्ण रूप से त्याग होने से अशुभ से पूर्ण निवृत्ति कही जाती है और ५ महाव्रत, ५ समिति और ३ गुप्ति रूप शुभ परिणति होने से शुभ में प्रवृत्ति कही जाती है।

इस निवृत्ति (नास्तिरूप) और प्रवृत्ति (अस्तिरूप) विकल्पात्मक परिणति को श्रीजिनेन्द्रदेव ने व्यवहार से चारित्र कहा है। ज्ञानी मुनि स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान को प्राप्त हो गये हैं। सम्यक्चारित्र का पुरुषार्थ चालू है। अभी स्वभाव में पूर्ण स्थिरता नहीं है अतः प्रवृत्ति का विकल्प उठता है। उस विकल्प में भी इतनी विशेषता है कि अशुभ विकल्पों से तो निवृत्त हो गये हैं। शुभ विकल्प उठते हैं अतः यह तेरह प्रकार की प्रवृत्ति होती है। पर यह ध्यान रहे कि ज्ञानी इसके ज्ञाता दृष्टा है। कर्त्ता भोक्ता नहीं है तथा इससे जो बंध होता है उसके भी ज्ञाता हैं। यह भी जानते हैं कि ये वास्तविक मोक्षमार्ग रूप नहीं है किंतु अशुभ से बचने के लिये और ऊपर की भूमिका को प्राप्त न होने के कारण ही इसमें प्रवृत्ति करते हैं। यहाँ एक बात तो यह ध्यान रखने की है कि ग्रन्थकार ने सूत्र नं० ३९ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मोक्षमार्ग कहा था और उस सम्यक्चारित्र का वर्णन अगले सूत्र नं० ४६ में है। यह तो बीच में उस भूमिका में जो शुभ विकल्प उठते हैं उन का वर्णन है। अतः इसको केवल चारित्र कहा सम्यक् चारित्र नहीं तथा व्यवहार नय से कहा निश्चय से नहीं। व्यवहार से कहने का अर्थ यह है कि इन शुभ विकल्पों को लोक तथा आगम में चारित्र कहने की रूढ़ि है पर वास्तव में यह चारित्र नहीं। चारित्र तो मोहक्षोभ रहित आत्मा का परिणाम है। यह तो वास्तव में आस्रव तत्त्व है। चारित्र गुण का परिणमन अशुभ विकल्परूप भी होता है, शुभ विकल्प रूप भी होता है और शुद्ध रूप भी होता है सो आचार्य देव ने अशुभ अंश से तो निवृत्ति बतला दी है, जितना शुभ अंश है उसको यहाँ व्यवहार चारित्र कहा है और जितना शुद्ध अंश है उसको अगले ४६ वें सूत्र में सम्यक् चारित्र कहा है। इस प्रकार चारित्र गुण के भिन्न २ अंशों का निरूपण कर दिया है। यहाँ मोक्षमार्ग होने से ज्ञानी के शुभ विकल्प की बात है। अज्ञानी के शुभ विकल्पों का कोई प्रकरण नहीं है। उसके विकल्पों को तो व्यवहार से भी चारित्र नहीं कहते। ज्ञानी मुनियों

के यह १३ प्रकार का व्यवहार चारित्र सहज होता है। वे इसे हटपूर्वक करते नहीं हैं। यह ध्यान रहे कि अज्ञानियों के चारित्र को तो व्यवहार चारित्र भी नहीं कहते उसको तो श्रीप्रवचनसार गा० २७१ में संसार-तत्त्व कहा है। श्रीसमयसार गा० ४१३ में व्यवहार विमूढ़ कहा है। श्री पंचास्तिकाय गा० १७२ में व्यवहाराभास कहा है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि ज्ञानी के शुभ विकल्पों को व्यवहार चारित्र कहते हैं शरीर की या वचन की क्रियाओं को नहीं। वह तो स्वतन्त्र पर द्रव्य की क्रिया है। ज्ञानी का ज्ञेय है। ज्ञानी उन्हें खींच तानकर करने का कभी प्रयत्न नहीं करते।

प्रश्न २५२—अज्ञानियों के चारित्र को व्यवहार चारित्र क्यों नहीं कहते?

उत्तर—इसलिये कि निश्चयपूर्वक ही व्यवहार पर आरोप दिया जाता है। जहाँ वास्तव में निश्चय चारित्र है वहाँ उपचार से व्यवहार शुभ विकल्प को भी मोक्षमार्ग का आरोप कर देते हैं। जहाँ निश्चय है ही नहीं वहाँ किस के आधार से मोक्षमार्ग कहें वह तो एकान्त संसार मार्ग है। (इस विषय में आत्मधर्म वर्ष नववाँ चैत्र २४८० विशेषाँक-व्यवहार विमूढ का वर्णन अवश्य देखें। गुरुदेव ने उसमें बहुत न्यायों का वर्णन किया है और इस विषय का स्पष्ट दिग्दर्शन किया है। बहुत सुन्दर लेख है)।

प्रश्न २५३—तो क्या व्यवहार चारित्र वास्तव में चारित्र नहो है?

उत्तर—भाई! चारित्र तो मोह, क्षोभ रहित आत्म-परिणाम को कहते हैं। वह तो निर्विकल्प-रूप है यह तो सविकल्प है।

प्रश्न २५४—यह कौनसा तत्त्व है?

उत्तर—अशुभ विकल्प पाप तत्त्व है, शुभ विकल्प पुण्य तत्त्व है। यह पुण्य तत्त्व है।

प्रश्न २५५—तो इतना तो भेद है ना?

उत्तर—आस्रव, बन्ध दृष्टि से इतना भी भेद नहीं है क्योंकि पुण्य, पाप

दोनों आस्रव बन्ध तत्त्व है। इनका फल संसार है। चारित्र तो मोह, क्षोभ रहित परिणाम है जो संवर निर्जरा रूप है जिस का फल मोक्ष है।

प्रश्न २५६—तो पाप को छोड़कर पुण्य रूप प्रवृत्ति तो करनी चाहिये ना?

उत्तर—करो। इसको कौन मना करता है किन्तु तत्त्व में भूल नहीं होनी चाहिये। शुभ विकल्प पुण्य तत्त्व है; संवर निर्जरा नहीं। उसका फल संसार है मोक्ष नहीं।

प्रश्न २५७ अज्ञानी और ज्ञानी के पुण्य मे कुछ फर्क है या नही?

उत्तर—है। अज्ञानी पुण्य में धर्म मान कर उसमें तन्मय हो जाता है और ज्ञानी जब तक ऊंची भूमिका में नहीं पहुंचता तब तक कुस्थान के राग को नाश करने के लिये और तीव्र राग ज्वर को नाश करने के लिये पुण्य में प्रवृत्ति करता है (श्रीपंचास्तिकाय गाथा १३६ टीका) किन्तु उसे उपादेय नहीं मानता, संवर निर्जरा रूप नहीं मानता। उसमें तन्मय नहीं होता किन्तु वह भाव, ज्ञानी के ज्ञेय रहता है और पाप परिणाम की तरह वह शीघ्र ही इसका भी नाश करके निर्विकल्प दशा को प्राप्त करेगा। पुण्य तत्त्व से आंशिक भी संवर निर्जरा मानने वाला अनन्त संसारी है (श्री प्रवचनसार गाथा ७७)।

प्रश्न २५८—यह सूत्र किस आगम आधार से रचा गया है?

उत्तर – यह सूत्र श्री नियमसार जी के निम्न १३ सूत्रों पर से रचा गया है और इस सूत्र का भावार्थ वही है जो इन तेरह सूत्रों का है।

(१) अहिंसा व्रत का स्वरूप

कुलजोणिजीवमग्गणठाणाइसु जाणऊण जीवाणं।
तस्सारंभणियत्तणपरिणामो होइ पढमवदं ॥५६॥

अर्थ—जीवों के कुल, योनि, जीवस्थान, मार्गणास्थान इत्यादि जानकर उनके आरम्भ से निवृत्तिरूप परिणाम वह पहला व्रत है।

(२) सत्यव्रत का स्वरूप

रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभासपरिणामं।
जो पजहदि साहु सया विदियवयं दोइ तस्सेव ॥५७॥

अर्थ—राग से, द्वेष से, अथवा मोह से होने वाले मृषा भाषा के परिणाम को जो साधु छोड़ता है, उसके ही सदा दूसरा व्रत है।

(३) अचौर्यव्रत का स्वरूप

गामे वा णयरे वा रण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुचदि गहणभावं तिदियवदं होदि तस्सेव ॥५८॥

अर्थ—ग्राम में, नगर में, कि वन में पर की वस्तु को देखकर जो साधु उसके ग्रहण के भाव को छोड़ता है, उसके ही तीसरा व्रत है।

(४) ब्रह्मचर्य व्रत का स्वरूप

दठ्ठूण इच्छिरूवं वांच्छाभावं णिवत्तदे तासु।
मेहुणसण्णविवज्जियपरिणामो अहव् तुरीयवदं ॥५९॥

अर्थ—स्त्रियों के रूप को देखकर उनके प्रति वाँछा भाव की निवृत्ति वह अथवा मैथुनसंज्ञारहित जो परिणाम वह चौथा व्रत है।

(५) परिग्रहत्यागव्रत का स्वरूप

सव्वेसिं गंथाणं तागो णिरवेखभावणापुव्वं।
पंचमवदमिदि भणिदं चारित्तभरं वहंतस्स ॥६०॥

अर्थ—निरपेक्ष भावनापूर्वक (अर्थात् जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं है ऐसी शुद्ध निरालंबन भावना सहित) सर्व परिग्रह का त्याग (सर्वपरिग्रह त्यागसम्बन्धी शुभभाव) वह चारित्र भर को वहने वाले के पाँचवा व्रत कहा है।

(६) ईर्यासमिति का स्वरूप

पासुगमग्गेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि।
गच्छइ पुरदो समणो इरियासमिदी हवे तस्स ॥६१॥

अर्थ—जो श्रमण प्रासुकमार्ग में दिन में धाराप्रमाण आगे देख कर चलता है, उसके ईर्यासमिति होती है।

(७) भाषा समिति का स्वरूप

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं ।
परिचत्ता सपरहिदं भासासमिदी वदंतस्स ॥६२॥

अर्थ—चुगली, हास्य, कर्कश भाषा, परनिंदा और आत्मप्रशंसा-रूप वचन परित्याग कर जो स्वपरहितरूप वचन बोलता है, उस के भाषासमिति होती है।

(८) एषणासमिति का स्वरूप

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च ।
दिण्णं परेण भत्तं समभुत्ती एसणासमिदी ॥६३॥

अर्थ—पर द्वारा देने में आया हुवा, कृत-कारित-अनुमोदन रहित प्रासुक और प्रशस्त (जो व्यवहार में प्रमादादि का कि राग का निमित्त न होय ऐसा) भोजन करने योग्य जो सम्यक् आहारग्रहण वह एषणा-समिति है।

(९) आदाननिक्षेपण समिति का स्वरूप

पोथइकमंडलाइं गहणविसग्गेसु पयतपरिणामो ।
आदावणणिक्खेवणसमिदी होदित्ति णिद्दिट्ठा ॥६४॥

अर्थ—पुस्तक, कमंडल, इत्यादि ग्रहण त्याग सम्बन्धी प्रयत्न-परिणाम वह आदाननिक्षेपण समिति है ऐसा कहा है।

(१०) व्युत्सर्ग समिति का स्वरूप

पासुगभूमिपदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण ।
उच्चारादिच्चागो पइट्ठासमिदी हवे तस्स ॥६५॥

अर्थ—जिसके, पर के उपरोध विना ऐसे (दूसरे से रोकने में न

आवे ऐसे), गूढ और प्रासुक भूमि प्रदेश में मलादि का त्याग होता है, उसके प्रतिष्ठापन समिति होती है ।

(११) मनोगुप्ति का स्वरूप

कालुस्समोहसण्णारागद्दोसाइअसुहभावाणं ।
परिहारो मणुगुत्ती ववहारणयेण परिकहियं ॥६६॥

अर्थ—कलुषता, मोह, संज्ञा, राग, द्वेष इत्यादि अशुभ भावों के परिहार को व्यवहार नय से मनोगुप्ति कहते हैं ।

(१२) वचन गुप्ति का स्वरूप

थीराजचोरभत्तकहादिवयणस्स पावहेउस्स ।
परिहारो वचगुत्ती अलीयादिणियत्तिवयणं वा ॥६७॥

अर्थ—पाप के हेतु भूत ऐसी स्त्री कथा, राजकथा, चोरकथा, भक्तकथा इत्यादि रूप वचनों के परिहार अथवा असत्यादिक की निवृत्ति वाले वचन, वह वचन गुप्ति है ।

(१३) कायगुप्ति का स्वरूप

बंधणछेदणमारणआकुंचण तह पसारणादीया ।
कायकिरियाणियत्ती णिद्दिट्ठा कायगुत्तित्ति ॥६८॥

अर्थ—बंधन, छेदन, मारण, संकोचना तथा विस्तारना इत्यादिक कायक्रियाओं की निवृत्ति को कायगुप्ति कहते हैं ।

निश्चय चारित्र का स्वरूप

बहिरब्भतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

बहिरभ्यंतरक्रियारोधः भवकारणप्रणाशार्थम् ।
ज्ञानिनः यत् जिनोक्तं तत् परमं सम्यक्चारित्रं ॥४६॥

सूत्रार्थ—संसार के कारणों को पूर्ण रूप से नाश करने के लिये ज्ञानी के जो बाह्य अभ्यन्तर क्रियाओं का निरोध है वह श्रीजिनेन्द्र

भगवान् का कहा हुवा उत्कृष्ट सम्यक्चारित्र है ।

भावार्थ—यह चारित्र गुण की निर्विकल्प पर्याय है जो बारहवें गुणस्थान के ज्ञानियों के होती है । मोहक्षोभरहित आत्म परिणति इसका लक्षण है । अज्ञानियों के यह नहीं होती इसलिये "ज्ञानिनः" पद सूत्र में दिया है । अभ्यन्तर क्रिया कषाय को कहते हैं । कषाय में मिथ्यादर्शन अविरति प्रमाद का भी ग्रहण है । और बहिरंग क्रिया योग को कहते हैं। ये दोनों क्रियायें संसार की कारण हैं । उन को ज्ञानी रोकते हैं । इसका अर्थ यह है कि स्वभाव की स्थिरता के कारण इनकी स्वतः उत्पत्ति ही नहीं होती । तो कहने में यह आता है कि ज्ञानी ने उनको रोक दिया है। ये दोनों क्रियायें संसार की कारण थीं अतः इनका अन्त होने से संसार का अन्त हो जाता है और स्वभाव स्थिरता से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । सूत्र में जो सम्यक् शब्द चारित्र का विशेषण है वह निर्विकल्प(निश्चय) चारित्र का द्योतक है और 'परमं' जो विशेषण है वह उसकी पूर्णता का और क्षायिकपने का द्योतक है जो बारहवें में ही होता है । तेरहवें में मोक्ष हो ही जाता है (यहाँ भाव मोक्ष की बात है द्रव्यमोक्ष की नहीं) आपको यह शंका हो सकती है कि यह तो बारहवें गुणस्थान का चारित्र कहा । नीचे के चारित्र का क्या हुवा । इसका उत्तर यह है कि सिद्धान्त का यह नियम है कि वर्णन पूर्णता की अपेक्षा हुवा करता है क्योंकि वह निर्दोष होता है । इससे यह स्पष्ट ध्वनित हो जाता है कि नीचे की भूमिकाओं में जितना शुद्ध अंश है उतना चारित्र वहाँ भी है । और उस अंश का नाम वहाँ भी सम्यक् चारित्र है । निश्चय चारित्र है । शरीर और वचन की क्रियाओं को आत्मा नहीं रोक सकता । वे योग के रुकने से स्वतः रुक जाती हैं ऐसा ही कोई वस्तु स्वभाव का नियम है । यह चारित्र सर्वथा निरोध अर्थात् निवृत्तिरूप है । "भवकारणप्रणाशार्थं" विशेषण इस बात को सिद्ध करता है कि इस चारित्र से ही संसार का नाश होता है पूर्वसूत्र नं० ४५ में वर्णित व्यवहार चारित्र से नहीं । वह तो उलटा बंध करके स्वर्ग में विषयसुख की आग में जलाता है

(श्रीपंचास्तिकाय गा० १७१ टीका)।

प्रश्न २५९—आपने कहा है कि चारित्र का वर्णन क्षायिक का ही होता है और पूर्ण का ही होता है। इसकी साक्षी किसी और आगम से भी मिल सकती है?

समाधान—हाँ! यह तो वस्तुस्वभाव का नियम है। श्रीपुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहा है:—

चारित्रं भवति यतः समस्तसावद्ययोगपरिहरणात्।
सकलकषायविमुक्तं विशदमुदासीनमात्मरूपं तत् ॥३९॥

अर्थ—क्योंकि समस्त सावद्य योग के त्याग से चारित्र होता है। अतः वह सम्पूर्ण कषायों से रहित है। विशद है। उदासीन अर्थात् वीतरागरूप है और "आत्मरूप" है। आत्मरूप शुद्धभाव को कहते हैं इसमें भी राग अंश की स्वीकारता रंचमात्र नहीं है।

प्रश्न २६०—क्या कोई और प्रमाण भी है?

उत्तर—श्रीपंचास्तिकाय नं० १०६ में इस प्रकार कहा है:—

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥१०६॥

अर्थ—सम्यक्त्व और ज्ञान से संयुक्त ऐसा चारित्र—के जो रागद्वेष से रहित होय वह लब्धबुद्धि भव्यजीवों के मोक्ष का मार्ग होता है।

टीका—प्रथम, मोक्षमार्ग की ही यह सूचना है। सम्यक्त्व और ज्ञान से युक्त ही—नहीं कि असम्यक्त्व और अज्ञान से युक्त, चारित्र ही—नहीं कि अचारित्र, रागद्वेषरहित होय ऐसा ही चारित्र—नहीं कि रागद्वेष सहित होय ऐसा, मोक्ष का ही—इस भाव से ही यह प्रगट है कि बन्ध का नहीं, मार्ग ही—नहि कि अमार्ग, भव्यों के ही—नहीं कि अभव्यों के, लब्धबुद्धियों के ही—नहीं कि अलब्धबुद्धियों के, क्षीणकषाय-

पना में ही होता है—नहीं कि कषायसहितपने में होता है। इस प्रकार आठ प्रकार का नियय यहाँ देखना अर्थात् इस गाथा में उपर्युक्त आठ प्रकार का नियम कहा है ऐसा समझना।

सार—सम्यक्त्व ज्ञानयुक्त चारित्र—कि जो रागद्वेष रहित होय वह, लब्धबुद्धि भव्य जीवों के, क्षीणकषायपना होने पर ही मोक्ष का मार्ग होता है।

और प्रमाण—श्रीपंचास्तिकाय गाथा १५४ में यही भाव है।

प्रश्न २६१—चारित्र का लक्षण (स्वरूप) क्या है ?

उत्तर—(१) मोह और क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम चारित्र है। (२) स्वरूप में चरना (आचरण करना) वह चारित्र है। (३) अपने स्वरूप में प्रवर्तन करना, शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना—ऐसा उस का अर्थ है। (४) वही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है (५) वही यथास्थित आत्म गुण होने से (अर्थात् विषमता रहित-सुस्थित-आत्मा का गुण होने से) साम्य है और (६) मोह-क्षोभ के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीव का परिणाम है।

प्रश्न २६२—निश्चय चारित्र और व्यवहार चारित्र ऐसे दो प्रकार का चारित्र है ?

उत्तर—नहीं; चारित्र तो दो नहीं हैं, किन्तु उसका निरूपण दो प्रकार से है। जहाँ सच्चे चारित्र को चारित्र कहा है वह निश्चय चारित्र है, तथा जो सम्यक्चारित्र तो नहीं है किन्तु सम्यक्चारित्र का निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचार से चारित्र कहते हैं; वह व्यवहार चारित्र है। निश्चय नय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मान कर उस का श्रद्धान करना चाहिये और व्यवहार नय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना चाहिये।

सूचना—इस निश्चय चारित्र का सविस्तार वर्णन श्रीकुन्दकुन्द आचार्य देव ने श्रीनियमसार जी में गाथा ७७ से १५८ तक ८२ गाथाओं

में ७ अधिकारों में किया है। निश्चय चारित्र का इतना स्पष्ट वर्णन और किसी ग्रन्थ में मेरे देखने में नहीं आया है । सब जगह निश्चय चारित्र की एक दो गाथा मिलती है। इसमें इकट्ठी ८२ हैं और अत्यन्त सुन्दर तथा मधुर हैं। आत्मशुद्धि के लिये रामबाण का काम करती है।

अगली भूमिका—श्रीद्रव्यसंग्रह के जो ३९ से ४६ तक के ८ सूत्र हैं। अत्यन्त उपयोगी हैं। मोक्षमार्ग पर ठीक और पूरा प्रकाश डालते हैं। यही विषय श्रीतत्त्वार्थसार ग्रन्थ में श्रीअमृतचन्द्र आचार्यदेव ने भी बहुत सुन्दर लिखा है। भाव ज्यों का त्यों वही है जो इन ८ सूत्रों का है। अतः वह भी यहाँ सार्थ दिया जाता है। उसकी स्वाध्याय से यह विषय हाथ पर रक्खे हुवे के समान आपको स्पष्ट हो जातेगा। भाव दोनों आचार्यों का बिलकुल एक है। इसीलिये हमने यहाँ देना उचित समझा है।

## श्रीतत्त्वार्थसार (मोक्षमार्ग निरूपण)

### मोक्षमार्ग को अंगकार करने की प्रेरणा

प्रमाणनयनिक्षेपनिर्देशादिसदादिभिः ।
सप्ततत्त्वीमिति ज्ञात्वा मोक्षमार्गं समाश्रयेत् ।।१।।

अर्थ—जिन सात तत्त्वों का स्वरूप जिस प्रकार क्रम से कहा गया है उन ७ तत्त्वों को उसी प्रकार प्रमाण[1] नय[2] निक्षेप[3] द्वारा निर्देश[1] स्वामित्व[2] साधन[3] अधिकरण[4] स्थिति[5] और विधान[6] द्वारा तथा सत्[1] संख्या[2] क्षेत्र[3] स्पर्शन[4] काल[5] अन्तर[6] भाव[7] अल्पबहुत्वं[8] द्वारा तथा सप्तभंगी द्वारा जानकर (भव्य जीव) मोक्षमार्ग को आश्रय करे।

### मोक्षमार्ग के दो भेद और उसमें साध्यसाधनपना

निश्चयव्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधा स्थितः ।
तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम् ।।२।।

अर्थ—निश्चय और व्यवहार के भेद से मोक्षमार्ग दो प्रकार स्थित है। उनमें पहला साध्यरूप है और दूसरा उसका साधन है।

भावार्थ—जो असली सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप निर्विकल्प (शुद्ध) पर्यायें हैं। वह निश्चय मोक्षमार्ग है। साध्य रूप है । और जो विकल्पात्मक (रागरूप) दर्शन ज्ञान चारित्र है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। साधन रूप है। भूतार्थ अर्थात् सच्चे का नाम निश्चय है। अभूतार्थ अर्थात् झूठे का नाम व्यवहार है। संवर निर्जरा रूप कार्य निश्चय मोक्षमार्ग से होता है अतः वह भूतार्थ है। और व्यवहार मोक्षमार्ग से उलटा आस्रव बन्ध होता है अतः वह अभूतार्थ है। फिर इन में साध्य साधन भाव कैसे घटेगा। इसका उत्तर यह है कि निश्चय तो शब्द और राग रहित है। अतः उसका प्रतिपादन नहीं हो सकता। इसलिये पहले म्लेम्छ (अज्ञानी) को मलेच्छ भाषा (व्यवहार नय) द्वारा वस्तु स्वरूप समझाया जाता है। विकल्प और शब्द के द्वारा असली सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का स्वरूप पकड़ाया जाता है। व्यवहार प्रतिपादक है निश्चय प्रतिपाद्य है। जब शिष्य गुरु आशय को पकड कर अभेद आत्मा का आश्रय करके असली सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र प्रकट कर लेता है तो उस प्रथम अवस्था के विकल्प पर (राग पर) साधन पने का आरोप आ जाता है या उन असली पर्यायों के साथ जो वस्तु विचार इत्यादि का विकल्प रहता है उसपर व्यवहार रत्नत्रय का आरोप आया करता है। इसप्रकार इस साध्य साधन की संधि है। वास्तव में तो वह आत्मद्रव्य कारण है जिस के आश्रय से शुद्ध पर्यायें प्रगट हुवी हैं। राग का तो अभाव होता है। व्यवहार रत्नत्रय अर्थात् राग अभावात्मक साधन है। भूत नैगम नय से साधन है और द्रव्य (कारण परमात्मा) साक्षात् कार्य रूप परिणमता है वह असली कारण है। व्यवहार करते २ निश्चय हो जाता हो ऐसा नहीं है किन्तु व्यवहार का विकल्प तोड़कर निश्चय होता है। व्यवहार करते २ होता तो द्रव्यलिंगी मुनि को भी हो जाया करता।

निश्चय मोक्षमार्ग का लक्षण (स्वरूप)

श्रद्धानाधिगमोपेक्षाः शुद्धस्य स्वात्मनो हि याः ।
सम्यक्त्वज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्गः स निश्चयः ॥३॥

अर्थ—निश्चय से जो अपनी शुद्ध आत्मा की (अभेदरूप से) श्रद्धा, जो अपनी शुद्ध आत्मा का (अभेद रूप से) ज्ञान, जो अपनी शुद्ध आत्मा की अभेदरूप से उपेक्षा(लीनता-रागद्वेषरहितता)हैं, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्रात्मक (एकाग्रता) निश्चय मोक्षमार्ग है।

भावार्थ—यहां शुद्ध आत्मा से आशय ९ तत्त्वों में अन्वय रूप से पाया जाने वाला त्रिकाली सामान्य ज्ञायक आत्मद्रव्य है। ९ तत्त्वों के विकल्प और लक्ष को तोड़कर जब उस शुद्ध आत्मा का अभेदात्मक श्रद्धान करता हैं तो वह द्रव्य स्वयं सम्यग्दर्शन रूप पर्याय से परिणत हो जाता है। वह शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन है और उसका लक्षण "अपनी शुद्ध आत्मा का श्रद्धान" है। इसी प्रकार ज्ञान ९ तत्त्वों के भेदात्मक राग सहित जानने को छोड़कर जब उन्हीं ९ तत्त्वों में पाई जाने वाली आत्मा को अभेद रूप से निर्विकल्प जानता है; वह जो निर्विकल्प जानना रूप उस द्रव्य का राग रहित शुद्ध परिणमन है वह निश्चय सम्यग्ज्ञान है। और ९ तत्त्वों में रागद्वेषपने का भाव पूर्णतया छोड़ कर जो उन ९ में पाये जाने वाली आत्मा में रमता है, स्थिरता करता है, आचरण करता है, उपेक्षा करता है, मध्यस्यता करता है, रागद्वेषरहितता करता है वह जो आत्मद्रव्य में स्थिरता है अर्थात् उस द्रव्य की स्व में स्थिरता रूप परिणति है बस वह निश्चय सम्यक्चारित्र पर्याय है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग है। इसमें वही भाव है जो श्रीसमयसार की गा० २७७ का है अथवा श्रीपुरुषार्थसिद्ध्युपाय नं० २१६ का है।

व्यवहार मोक्षमार्ग का लक्षण (स्वरूप)

श्रद्धानाधिगमोपेक्षा याः पुनः स्युः परात्मना।
सम्यक्त्वज्ञानवृत्तात्मा स मार्गो व्यवहारतः ॥४॥

अर्थ—(सात तत्त्वों का) पर रूप से जो श्रद्धान है, (सात तत्त्वों का) पर रूप से जो ज्ञान है, (सात तत्त्वों की) पर रूप से जो उपेक्षा है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक व्यवहार से मोक्षमार्ग है।

भावार्थ—मूलसूत्र में 'परात्मना' शब्द खास महत्त्व का है। तृतीया का एक वचन है। उसका अर्थ है 'पररूप से' अर्थात् परद्रव्यों की (सात तत्त्वों की) भेद रूप से राग सहित श्रद्धा व्यवहार सम्यग्दर्शन है। पर द्रव्यों का (सात तत्त्वों का आचारादि शब्द श्रुत का) भेद रूप से राग सहित जानना व्यवहार ज्ञान है तथा पर द्रव्यों का (सात तत्त्वों का षट् जीवनिकाय का) भेद रूप से राग सहित उपेक्षा व्यवहार चारित्र है। यह मोक्षमार्ग विकल्पात्मक है। रागरूप है। वास्तव में मोक्षमार्ग रूप नहीं है क्योंकि संवर निर्जरा का कारण नहीं है किन्तु आस्रव बन्धतत्त्व है किन्तु यह निश्चय मोक्षमार्ग का पूर्वचर या सहचर होने से व्यवहार से मोक्षमार्ग कहा जाता है। इस में अज्ञानी के श्रद्धान ज्ञान आचरण का ग्रहण नहीं है क्योंकि उस श्रद्धान ज्ञान चारित्र को तो व्यवहार भी नहीं कहते। मात्र ज्ञानी के विकल्पों पर ही निश्चय प्रगट होने पर फिर उस के व्यवहार पर मोक्षमार्ग का आरोप आता है। निश्चय के विना व्यवहार को व्यवहार भी नहीं कहते-व्यवहारविमूढ या व्यवहाराभास कहते हैं। उसे श्रीप्रवचनसार में संसार तत्त्व कहा है। इस में ठीक वही भाव है जो श्रीसमयसार गा० २७६ में है। अब अगले सूत्र से ही इस अर्थ को दृढ़ करते है।

### व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वामी

श्रद्दधानः परद्रव्यं वुद्ध्यमानस्तदेव हि।
तदेवोपेक्षमाणश्च व्यवहारी स्मृतो मुनिः ॥५॥

अर्थ—परद्रव्य को श्रद्धान करता हुवा, उस ही पर द्रव्य को जानता हुवा और उस ही पर द्रव्य को उपेक्षा करता हुवा मुनि व्यवहारी माना गया है।

भावार्थ—यह छठे गुणस्थान की मुख्यता से निरूपण है। भावलिंगी मुनि की बात है। उसके निश्चय रत्नत्रय अंश को गौण करके जो पर्याय में सात तत्त्वों के भेदसहित श्रद्धानरूप रागमिश्रित परिणति है

तथा आचारादि के ज्ञानरूप ज्ञान परिणति है तथा षट्काय के जीवों की उपेक्षा रूप जो परिणति है उस को धारण करने वाला वह मुनि जबतक ऊपर की दशा को अङ्गीकार नहीं करता, व्यवहारी मुनि बोला जाता है क्योंकि उसने मोटे रूप से (स्थूल दृष्टि से) व्यवहार का आश्रय कर रक्खा है। सूक्ष्म दृष्टि से वह निश्चय पर आरूढ़ है और उसका निश्चय गौण होता हुवा भी उसी समय मुख्य जैसा काम कर रहा है क्योंकि असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा हो रही है और संवर भी हो रहा है पर निश्चय रत्नत्रय अंश से। इस व्यवहार से तो बंध हो रहा है। यह निश्चित है कि वह व्यवहार का तथा बंध का ज्ञाता है। आश्रय तो शुद्ध तत्त्व का ही है। इस में वही भाव है जो श्रीद्रव्यसंग्रह के सूत्र नं० ४५ में या श्री नियमसार नं० ५५ से ७६ तक का है।

निश्चय मोक्षमार्ग का स्वामी

स्वद्रव्यं श्रद्दधानस्तु बुद्ध्यमानस्तदेव हि ।
तदेवोपेक्षमाणश्च निश्चयान्मुनिसत्तमः ॥६॥

अर्थ—स्वद्रव्य को (अपनी शुद्ध आत्मा को) श्रद्धान करता हुवा उस ही स्व द्रव्य को जानता हुवा और उस ही स्वद्रव्य को उपेक्षा करता हुवा निश्चय से उत्कृष्ट मुनि है।

भावार्थ—यह बारहवें गुणस्थान के मुनि की बात है। ध्यात्म का निरूपण पूरे की अपेक्षा हुवा करता है वहां रत्नत्रय पूर्ण है। स्वद्रव्य की पूर्ण श्रद्धा ज्ञान चारित्र है। रागअंश का अभाव होने से भेद का या पर का श्रद्धान ज्ञान चारित्र नहीं माना जाता है। इसमें वही भाव है जो श्रीप्रवचनसार गा० २४२ तथा उसके कलश नं० १६ का है। श्रीपुरुषार्थ सिद्धि नं० ३९ का भी यही अर्थ है। श्रीपंचास्तिकाय नं० १०६ तथा १५४ का भी यही अर्थ है। यहां 'सत्तमः' शब्द Superlative Digree को बताता है अर्थात् मोक्षमार्ग में सबसे उत्कृष्ट मुनि। उस शब्द में स्पष्ट बारहवें की ध्वनि है। निश्चय से यह मुनि सत्तमः यूं है कि यहां

राग अंश बिलकुल नहीं है। अब इसी बारहवें गुणस्थान का समर्थन अगले सूत्र से करते हैं।

निश्चयी के अभेद का समर्थन

आत्मा ज्ञातृतया ज्ञान सम्यक्त्व चरितं हि सः।
स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुतः ॥७॥

अर्थ—दर्शनमोह और चारित्रमोह से अलिप्त, स्व में स्थित, वह आत्मा जाननेपने से ज्ञान है, श्रद्धानपने से सम्यक्त्व है, उपेक्षापने से चारित्र है।

भावार्थ—द्रव्य और पर्याय में भेद डालने वाली वस्तु राग है। सो बारहवें गुणस्थान में जब मुनि दर्शनमोह और चारित्रमोह का सर्वथा क्षय करके स्व में पूर्ण रूप से स्थित हो जाता है तो स्व को अभेदरूप जानने से वह आत्मा स्वयं ज्ञान कहलाता है अर्थात् ज्ञान ज्ञानी का भेद फिर मिट जाता है। स्व को अभेद रूप श्रद्धान करने से वह आत्मा स्वयं सम्यक्त्व कहलाता है। स्व में अभेद रूप आचरण होने से वह आत्मा स्वयं चारित्र कहलाता है। भाव यह है कि राग के कारण जो सामान्य विशेष में भेद हो रहा था वह मिट जाता हैं। आत्मा 'पानकवत्' स्वयं, दर्शनज्ञानचारित्रमय हो जाता है। अब सूत्र नं० ८ से २० तक अनेक प्रकार से यह दिखाते हैं कि हर प्रकार से द्रव्य और पर्याय का अभेद हो गया है। यह केवल अभेद दशा का दिग्दर्शन है। बारहवें गुणस्थान की अवस्था में साधक की पूर्ण दशा का वर्णन है।

'कर्त्ता' कारक से अभेद

पश्यति स्वस्वरूपं यो जानाति च चरत्यपि।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव स स्मृतः ॥८॥

अर्थ—जो स्वस्वरूप को देखता है, जो स्वस्वरूप को जानता है और स्वस्वरूप को आचरण भी करता है, वह आत्मा ही सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीन रूप माना गया है।

'कर्म' कारक से अभेद

पश्यति स्वस्वरूपं यं जानाति च चरत्यपि ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव तन्मयः ॥९॥

अर्थ—जिस अपने स्वरूप को देखता है, जिस अपने स्वरूप को जानता है, और जिस अपने स्वरूप को आचरण भी करता है, वह आत्मा ही दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनों से तन्मय है ।

'करण' कारक से अभेद

दृश्यते येन रूपेण ज्ञायते चर्यतेऽपि च ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव तन्मयः ॥१०॥

अर्थ—जिस रूप से देखा जाता है, जिस रूप से जाना जाता है, और जिस रूप से आचरण भी किया जाता है । वह आत्मा ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन से तन्मय है ।

'सम्प्रदान' कारक से अभेद

यस्मै पश्यति जानाति स्वरूपाय चरत्यपि ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव तन्मयः ॥११॥

अर्थ—जिस स्वरूप के लिये देखता है, जिस स्वरूप के लिये जानता है और जिस स्वरूप के लिये आचरण भी करता है; वह आत्मा ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन से तन्मय है ।

'अपादान' कारक से अभेद

यस्मात्पश्यति जानाति स्वं स्वरूपाच्चरत्यपि ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव तन्मयः ॥१२॥

अर्थ—जिस स्वरूप से अपने को देखता है, जिस स्वरूप से अपने को जानता है और जिस स्वरूप से अपने को आचरण भी करता है, वह आत्मा ही दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीन से तन्मय है ।

'सम्बन्ध' कारक से अभेद

यस्य पश्यति जानाति स्वरूपस्य चरत्यपि ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव तन्मयः ॥१३॥

अर्थ—जिस स्वरूप का देखने वाला है, जिस स्वरूप का जानने वाला है, और जिस स्वरूप का आचरण भी करने वाला है, वह आत्मा ही दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीन से तन्मय है ।

'अधिकरण' कारक से अभेद

यस्मिन् पश्यति जानाति स्वस्वरूपे चरत्यपि ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव तन्मयः ॥१४॥

अर्थ—जिस अपने स्वरूप में देखता है, जिस अपने स्वरूप में जानता है और जिस अपने स्वरूप में आचरण भी करता है, वह आत्मा ही दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीन से तन्मय है ।

'क्रिया' से अभेद

ये स्वभावाद्दृशिज्ञप्तिचर्यारूपक्रियात्मकाः ।
दर्शनज्ञानचरित्रत्रयमात्मैव तन्मयः ॥१५॥

अर्थ—जो स्वभाव से दर्शन ज्ञान आचरण रूप क्रियात्मक हैं, वह आत्मा ही दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीन से तन्मय है ।

'गुण' से अभेद

दर्शनज्ञानचारित्रगुणानां य इहाश्रयः ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव स स्मृतः ॥१६॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र गुणों का जो यहाँ आश्रय है, वह आत्मा ही दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीन रूप माना गया है ।

'पर्याय' से अभेद

दर्शनज्ञानचारित्रपर्यायाणां य आश्रयः ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव स स्मृतः ॥१७॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र पर्यायों का जो आश्रय है, वह आत्मा ही दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीन रूप माना गया है।

'प्रदेशों' से अभेद

दर्शनज्ञानचारित्रप्रदेशा ये प्ररूपिताः ।
दर्शनज्ञानचारित्रमयस्यात्मन एव ते ॥१८॥

अर्थ—जो दर्शन ज्ञान चारित्र के प्रदेश कहे गये है, वे दर्शन ज्ञान चारित्रमय आत्मा के ही हैं।

'अगुरुलघुगुण' से अभेद

दर्शनज्ञानचारित्रागुरुलघ्वाह्वया गुणाः ।
दर्शनज्ञानचारित्रमयस्यात्मन एव ते ॥१९॥

अर्थ—जो दर्शन ज्ञान चारित्र अगुरुलघु नाम के गुण है, वे दर्शन ज्ञान चारित्रमय आत्मा के ही हैं।

'उत्पादव्ययध्रौव्य' से अभेद

दर्शनज्ञानचारित्रध्रौव्योत्पादव्ययास्तु ये ।
दर्शनज्ञानचारित्रमयस्यात्मन एव ते ॥२०॥

अर्थ—जो दर्शन ज्ञान चारित्र, ध्रौव्य उत्पाद व्यय है वे दर्शन-ज्ञान चारित्रमय आत्मा के ही हैं।

कथन पद्धति

स्यात्सम्यक्त्वज्ञानचारित्ररूपः पर्यायार्थदिशतो मुक्तिमार्गः ।
एको ज्ञाता सर्वदैवाद्वितीयः स्याद्द्रव्यार्थदिशतो मुक्तिमार्गः ॥२१॥

अर्थ—पर्यायार्थिक नय के कथन से सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र मुक्ति मार्ग है और द्रव्यार्थिक नय के कथन से एक अखण्ड ज्ञाता (आत्मद्रव्य) ही सदा मुक्तिमार्ग है (प्रमाण से दोनों मिलकर मुक्तिमार्ग हैं)।

भावार्थ—यह सूत्र आचार्य श्रीअमृतचन्द्र जी ने अत्यन्त सुन्दर लिखा है। इस का भाव ऐसा है कि यूं तो त्रिकाली ज्ञायक आत्मा

प्रत्येक जीव में अनादि से है पर चौथे गुणस्थान से ही जितनी पर्याय राग से छूटकर स्वभाव से तन्मय होती जा रही है उतना द्रव्य का अखंड निर्माण होता जा रहा है और यही क्रम बारहवें तक चलता है। वहाँ आकर पूरा राग टूट कर पूरा स्व में स्थित हो जाता है । यह छद्मस्थ की पूरी स्वसमय अवस्था है। अज्ञान रूप 'पर समय' का अंश रहने से पूर्ण (केवली) नहीं हुवा है पर साधक दशा पूर्ण हो गई है सो कहते है कि यदि पर्यायदृष्टि से देखो तो चौथे से बारहवें तक जो शुद्ध पर्याय अश प्रगट है वह मोक्षमार्ग (मोक्ष का कारण) है और यदि द्रव्यदृष्टि से देखो तो पर्याय से अभेद,अखण्ड वह ज्ञायक द्रव्य ही चौथे से बारहवें तक मोक्ष का मार्ग (मोक्ष का कारण) है [समस्त पदार्थ भेदाभेदात्मक हैं अतः प्रमाण दृष्टि से वे दोनों (सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तथा एकाग्ररूप द्रव्य दोनों) कारण हैं] यही भाव श्री प्रवचनसार जी में कहा है:—

दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु ।
एयग्गगदो त्ति मदो सामण्णं तस्स पडिपुण्णं ॥२४२॥

अर्थ—जो दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों में एक ही साथ आरूढ़ है, वह एकाग्रता को प्राप्त है इस प्रकार (शास्त्र में) कहा है। उस के श्रामण्य परिपूर्ण है। मुनीपना

टीका—ज्ञेयतत्त्व और ज्ञाततत्त्व की तथाप्रकार (जैसी है वैसी ही, यथार्थ) प्रतीति जिस का लक्षण है वह सम्यग्दर्शन पर्याय है; ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार अनुभूति जिसका लक्षण है वह ज्ञानपर्याय है, ज्ञेय और ज्ञाता को क्रियान्तर से निवृत्ति के द्वारा रचित दृष्टि ज्ञातृतत्त्व में परिणति जिसका लक्षण है वह चारित्र पर्याय है। इन पर्यायों के और आत्मा के भाव्यभावकता के द्वारा उत्पन्न अति गाढ़ इतरेतर मिलन के बल के कारण इन तीनों पर्यायरूप युगपत् अंग-अंगी भाव से परिणत आत्मा के, आत्मनिष्ठता होने पर जो संयतत्त्व होता है वह संयतत्त्व, एकाग्रतालक्षण वाला श्रामण्य जिसका दूसरा नाम है ऐसा मोक्षमार्ग ही

है—ऐसा समझना चाहिये, क्योंकि वहां (संयतत्त्व में) पेय की भांति अनेकात्मक एकका अनुभव होने पर भी, समस्त परद्रव्य से निवृत्ति होने से एकाग्रता अभिव्यक्त (प्रगट) है। वह (संयतत्त्वरूप अथवा श्रामण्यरूप मोक्षमार्ग) भेदात्मक है, इसलिये 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है' इस प्रकार पर्यायप्रधान व्यवहार नय से उस का प्रज्ञापन है; वह (मोक्षमार्ग) अभेदात्मक है इसलिये 'एकाग्रता मोक्षमार्ग है' इसप्रकार द्रव्यप्रधान निश्चय नय से उसका प्रज्ञापन हैं; समस्त ही पदार्थ भेदाभेदात्मक है, इसलिये 'वे दोनों (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा एकाग्रता) मोक्षमार्ग है, इसप्रकार प्रमाण से उसका प्रज्ञापन है। [अब श्लोक द्वारा मोक्षप्राप्ति के लिये दृष्टा-ज्ञाता में लीनता करने को कहा जाता है]।

इत्येवं प्रतिपत्तराशयवशादेकोऽप्यनेकीभवं-
स्त्रैलक्षण्यमथैकतामुपगतो मार्गोऽपवर्गस्य यः।
द्रष्टृज्ञातृनिबद्धवृत्तिमचलं लोकस्तमास्कन्दता-
मास्कन्दत्यचिराद्विकाशमतुलं येनोल्लसन्त्याश्चितेः ॥१६॥

अर्थ—इस प्रकार, प्रतिपादक के आशय के वश, एक होने पर भी अनेक होता हुवा (अभेद प्रधान निश्चयनय से एक-एकाग्रतारूप-होता हुवा भी वक्ता के अभिप्रायानुसार भेदप्रधान व्यवहारनय से अनेक भी-दर्शनज्ञानचारित्ररूप भी-होता होने से) एकता (एकलक्षणता) को तथा त्रिलक्षणता को प्राप्त जो मोक्ष का मार्ग उसे लोक दृष्टा ज्ञाता में परिणति बांधकर (लीन करके) अचलरूप से अवलम्बन करे, जिससे वह (लोक) उल्लसित चेतना के अतुल विकास को अल्पकाल में प्राप्त हो।

प्रश्न २६३—मोक्षमार्ग एक ही है या अधिक हैं?

उत्तर—मोक्षमार्ग एक ही है और वह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता ही है। निज परमात्म तत्त्व के सम्यक् श्रद्धान्-ज्ञान-अनुष्ठान रूप शुद्ध रत्नत्रयात्मक मार्ग परम निरपेक्ष होने से मोक्ष का उपाय है। व्यवहार रत्नत्रय मोक्षमार्ग नहीं है। वह तो आरोपित कथन है।

# मोक्षकारण अन्तर्गत ध्यान निरूपण

## (सूत्र ४७ से ५८ तक १२)

### ध्यानाभ्यास की प्रेरणा

दुविहं पि मोक्खहेउं, झाणे पाउणदि ज मुणी णियमा।
तह्मा पयत्तचित्ता, जूय झाण समब्भसह ॥४७॥

द्विविध अपि मोक्षहेतुं ध्यानेन प्राप्नोति यत् मुनिः नियमात्।
तस्मात् प्रयत्नचित्ताः यूय ध्यान समभ्यसत ॥४७॥

सूत्रार्थ—क्योंकि मुनि नियम से दोनो प्रकार के भी मोक्ष मार्ग को ध्यान से प्राप्त करता है इसलिये प्रयत्नचित्त तुम ध्यान को भले प्रकार अभ्यास करो।

भावार्थ—पंचपरमेष्ठी के विकल्पात्मक शुभ चिन्तवन के कारण सब विषय कषाय के विकल्प दूर होने से उसे व्यवहार मोक्ष मार्ग कहते हैं और आत्माश्रित निर्विकल्प ध्यान तो साक्षात् है ही निश्चय मोक्षमार्ग रूप। इस प्रकार ध्यान से दोनों प्रकार के मोक्षमार्ग की सिद्धि होती है।

### ध्यान की सिद्धि का उपाय

मा मुज्झह, मा रज्जह, मा दूसह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु।
थिरमिच्छहि जह चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

मा मुह्यत मा रज्यत मा द्विष्यत इष्टानिष्टार्थेषु।
स्थिर इच्छत यदि चित्त विचित्रध्यानप्रसिद्ध्यै ॥४८॥

सूत्रार्थ—जो विचित्र ध्यान की सिद्धि के लिये मन को स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट अनिष्ट पदार्थों में मोह मत करो, राग मत करो, द्वेष मत करो।

भावार्थ—पदार्थों में इष्ट अनिष्ट की कल्पना ही विकल्प की जननी है। अतः विकल्प का अभाव करने के लिये पदार्थों में मोह राग द्वेष को छोड़ना ही चाहिये।

ध्यान योग्य मन्त्र

पणतीससोलछप्पणचदुगमेगं च जवह ज्झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥४९॥

पञ्चत्रिंशत् षोडश षट् पंच चत्वारि द्विकं एकं च जपत ध्यायत ।
परमेष्ठिवाचकानां अन्यत् च गुरूपदेशेन ॥४९॥

सूत्रार्थ—परमेष्ठी को कहने वाले ३५, १६, ६, ५, ४, २, १ अक्षरों के मन्त्रों को जपो ध्याओ और गुरु के उपदेश से अन्य (मन्त्रों) को भी जपो ध्याओ ।

(१) अरहन्त परमेष्ठी का स्वरूप

णट्ठचदुघाइकम्मो, दसंणसुहणाणवीरियमईओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचितिज्जो ॥५०॥

नष्टचतुर्घातिकर्मा दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः ।
शुभदेहस्थः आत्मा शुद्धः अर्हन् विचिन्तनीयः ॥५०॥

सूत्रार्थ—नष्ट कर दिये हैं ४ घातिया कर्म जिसने[1], शुभ देह में स्थित[2], शुद्ध[3], दर्शन-सुख-ज्ञान-वीर्यमय[4], आत्मा अरहन्त ध्यान करने योग्य है ।

भावार्थ—(१) 'नष्टघातिकर्म' विशेषण उनकी द्रव्य कर्म की अवस्था का द्योतक है । हमारे घाति कर्मों का उदय है भगवान् के अभाव है । (२) शुभ देह उन के परम औदारिक शरीर संयोग का द्योतक है । हम लोगों का शरीर हाड, माँस, रोग, भूख, प्यास इत्यादि से अत्यन्त निकृष्ट है । भगवान् का शरीर स्फटिक मणिवत् शुद्ध है । यह स्वतः अपने कारण से ही है । (३) शुद्ध विशेषण उनके कर्म चेतना और कर्म फल चेतना अर्थात् भाव कर्म के अभाव का द्योतक है । सब संसारी जीवों को राग का महा दुःख है । भगवान हर प्रकार के राग से मुक्त है । ये तीन विशेषण नास्ति के हैं । (४) चौथा विशेषण उन की

उपादान पर्याय का द्योतक है। जो अनन्त ज्ञान-सुख-दर्शन-वीर्य की मानो साक्षात् मूर्ति ही हैं। जिससे भगवान् त्रिलोक के परम पूज्य गुरु पद को प्राप्त हुवे हैं।

सार—पहले तीन विशेषण द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म, के अभाव के द्योतक हैं। चौथा कार्य परमात्मा की अवस्था का द्योतक है। प्रमाण:—श्रीनियमसार जी में कहा है।

घणघाइकम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुणसहिया ।
चोत्तिसअदिसअजुत्ता अरिहंता एरिसा होंति ॥७१॥

अर्थ—घनघाती कर्म रहित, केवलज्ञानादि परम गुणों सहित और चौंतीस अतिशय संयुक्त;—ऐसे अरहन्त होते है।

(२) सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा ।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥

नष्टाष्टकर्म्मदेह: लोकालोकस्य ज्ञायक: द्रष्टा ।
पुरुषाकार: आतमा सिद्ध: ध्यायेत लोकशिखरस्थ: ॥५१॥

सूत्रार्थ—नाश कर दिये हैं आठ कर्म और शरीर को जिसने[१], लोक अलोक के ज्ञाता द्रष्टा[२], पुरुषाकार[३], लोक के शिखर में स्थित[४], आत्मा सिद्ध ध्याओ।

भावार्थ—(१) पहला विशेषण द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म की शुद्धि का द्योतक है। भगवान् सिद्ध कर्ममल से पूर्ण रहित है। यह अभावात्मक विशेषण है। (२) दूसरा लोकालोक के ज्ञाता द्रष्टा-स्वरूप की पूर्ण प्राप्ति अर्थात् कार्य समयसार का द्योतक है। (३) पुरुषाकार विशेषण अत्यन्त अमूर्तिक स्वभाव का द्योतक है जो प्रदेशवत्व गुण की स्वभाव पर्याय को प्रकट कर रहा है। (४) लोक के शिखर में स्थित उनके त्रयलोकपूज्यपने का द्योतक है और परक्षेत्र बाधक है।

श्रीनियमसार जी में कहा है

णट्ठट्ठकम्बंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होंति ।।७२।।

अर्थ—आठ कर्म के बंध को जिसने नष्ट कर दिया है ऐसा आठ महागुणों सहित, परम, लोक के अग्र में स्थित, और नित्य;—ऐसे वे सिद्ध होते हैं ।

(३) आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणपहाणे, वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी झेओ ।।५२।।

दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतपाचारे ।
आत्मानं परं च युनक्ति सः आचार्यः मुनिः ध्येयः ।।५२।।

सूत्रार्थ—दर्शन ज्ञान प्रधान वीर्याचार, चारित्राचार और श्रेष्ठ तपाचार में अपने को और पर को जो जोड़ते हैं वह मुनि-आचार्य ध्यान करने योग्य है ।

भावार्थ—पाँच आचारों में निपुणता छद्मस्थ के बुद्धि पूर्वक पूर्ण पुरुषार्थ की द्योतक है जिस के कारण आचार्य परमेष्ठी शिरोमणि हैं तथा छद्मस्थ जीवों में मोक्षमार्ग साधक मुनियों के आश्रय हैं (पंचाचार का विशेष स्वरूप जानने के लिये देखें श्री मूलाचार गाथा १९८ से ४१९ तक) ।

श्री नियमसार जी मे कहा है

पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा ।
धीरा गुणगंभीरा आयरिया एरिसा होंति ।।७३।।

अर्थ—पंचाचारों से परिपूर्ण, पंचेन्द्रियरूपी हाथी के मद का दलन करने वाला, धीर और गुणगंभीर;—ऐसे आचार्य होते हैं ।

(४) उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो ।
सो उवज्झाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

यः रत्नत्रययुक्तः नित्यं धर्मोपदेशने निरतः ।
सः उपाध्यायः आत्मा यतिवरवृषभः नमःतस्मै ॥५३॥

सूत्रार्थ—जो रत्नत्रय युक्त[1] है, नित्य धर्मोपदेश देने में रत[2] है, यतियों में श्रेष्ठ में श्रेष्ठ है[3], वह आत्मा उपाध्याय है । उसके लिये नमस्कार हो ।

भावार्थ—चारित्र की शोभा ज्ञान से है । ज्ञान को सारा जगत् उच्च मान की दृष्टि से देखता है और फिर उपाध्याय परमेष्ठी का पद छद्मस्थ ज्ञानियों में सर्व श्रेष्ठ है । वे वास्तव में नमस्कार के पात्र हैं । केवल शब्दज्ञानी मुनि को उपाध्याय नहीं कहते किन्तु रत्नत्रय के साथ ज्ञान की विशेषता से उपाध्याय पद होता है ।

श्री नियमसार जी में कहा है

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा ।
णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति ॥७४॥

अर्थ—रत्नत्रय से संयुक्त, जिनकथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक और निःकाँक्ष भावसहित;—ऐसे उपाध्याय होते हैं ।

(५) साधु परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणसमग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू स मुणी णमो तस्स ॥५४॥

दर्शनज्ञानसमग्र मार्गं मोक्षस्य यः हि चारित्रम् ।
साधयति नित्यशुद्धं साधुः सः मुनिः नमः तस्मै ॥५४॥

सूत्रार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान से परिपूर्ण[1], नित्यशुद्ध[2], मोक्ष के मार्गभूत[3], चारित्र को निश्चय से जो सावता है वह मुनि साधु है, उसके लिये नमस्कार हो ।

भावार्थ--"चारित्तं खलु धम्मो" इस आगम सूत्र के अनुसार धन्य हैं वे ज्ञानी साधु जो संसार के सब झन्झटों से मुक्त होकर निरन्तर मोह क्षोभ रहित निश्चय चारित्र की साधना करते हैं। ध्यान रहे यहाँ व्यवहार चारित्र को याद भी नहीं किया क्योंकि वह तो ज्ञानियों के निश्चय के साथ अविनाभाव रूप से होता ही है। निश्चय रहित केवल व्यवहार चारित्र पालने वाले को जैन धर्म में साधु नहीं कहते। 'तथा दर्शनज्ञान-समग्रं' विशेषण यह बतलाता है कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान के बिना केवल व्यवहार चारित्र पालने से भी साधु नहीं होता। सम्यग्दर्शन धर्म का मूल हैं और चारित्र साक्षात् धर्म है ऐसा "मोक्षस्य मार्ग" विशेषण से प्रगट किया है

श्री नियमसार जी मे कहा है

वावारविप्पमुक्का चउव्विहाराहणासयारत्ता ।
णिग्गंथा णिम्मोहा साहू एदेरिसा होंति ॥७५॥

अर्थ—व्यापार से विमुक्त (समस्त व्यापार रहित), चतुर्विध आराधना में सदा रक्त, निर्ग्रंथ और निर्मोह;—ऐसे साधु होते हैं।

निश्चय ध्यान का स्वरूप

जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।
लद्धूण य एयत्तं, तदाहु तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं ॥५५॥
यत् किंचित् अपि चिन्तयन् निरीहवृत्तिः भवति यदा साधुः।
लब्ध्वा च एकत्व तदा आहुः तत् तस्य निश्चय ध्यानम् ॥५५॥

सूत्रार्थ—जो, कुछ भी विचार करता हुवा साधु एकत्व को प्राप्त करके जब निरीहवृत्ति वाला (निर्विकल्प प्रवृत्ति वाला) होता है वह उस का निश्चय ध्यान है ऐसा जिनेन्द्र कहते हैं।

भावार्थ—आत्मा के बुद्धिपूर्वक विकल्प का अभाव होने से सातवें गुणस्थान में जो उच्चतम कोटि का धर्म्य ध्यान होता है यह उस दशा का द्योतक है।

### परम ध्यान का स्वरूप

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंवि जेण होई थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥५६॥

मा चेष्टत मा जल्पत मा चिन्तयत किं अपि येन भवति स्थिरः ।
आत्मा आत्मनि रतः इदं एव परं भवति ध्यानम् ॥५६

सूत्रार्थ—तुम कुछ भी काय से चेष्टा मत करो, वचन से मत बोलो, मन से मत विचारो, जिससे आत्मा आत्मा में स्थिर हो, लीन हो। यह ही उत्कृष्ट ध्यान होता है।

भावार्थ—यहाँ साक्षात् शुक्ल ध्यान की अवस्था का निरूपण है जहाँ आत्मा आत्मा में साक्षात् स्थित-लीन हो जाता है। (यह स्थित-लीन शब्द तथा इस ध्यान का भाव श्री समयसार जी की गाथा ७३ से लिया गया है)।

### ध्यान की योग्यता

तवसुदवदवं चेदा, ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा ।
तम्हा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

तपः श्रुतव्रतवान् चेता ध्यानरथधुरन्धरः भवति यस्मात् ।
तस्मात् तत्त्रिकनिरताः तल्लब्ध्यै सदा भवत ॥५७॥

सूत्रार्थ—क्योंकि तप-श्रुत-व्रतवान् आत्मा ध्यान रूपी रथकी धुरा का धारी होता है इसलिये उस परमध्यान की सिद्धि के लिये निरन्तर उन तीनों (तप-श्रुत-व्रत) में लीन होओ।

भावार्थ—ध्यान के बाधक विकल्प हैं। आत्मा में विकल्पों की उत्पत्ति तीन कारणों से होती है। (१) वस्तु स्वरूप की अजानकारी से तो मोह के विकल्प उठते हैं यह तो 'श्रुत में निपुण' होने से मिटते हैं। (२) दूसरे इन्द्रिय विषय के कारण विकल्प उठते हैं ये 'व्रतवान्' होने से शमन हो जाते हैं। (३) तीसरे कषाय के कारण विकल्प उठते हैं ये

'तपस्वी' बनने से शान्त होते हैं। बस विकल्पों के शान्त होते ही ध्यान की और ध्यान से मोक्षमार्ग की सिद्धि होती है। अतः भव्य जीवों को मोक्षमार्ग की तथा ध्यान की सिद्धि के लिये अवश्य तप-श्रुत-व्रत का अभ्यास करना चाहिये। इन्हीं तीन कारणों से आत्मा अपने इष्ट ध्यान की सिद्धि कर लेता है।

## ग्रन्थ समाप्ति

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचन्दमुणिणा भणियं जं ॥५८॥

द्रव्यसंग्रह इमं मुनिनाथा: दोपसंचयच्युताः श्रुतपूर्णाः।
शोधयन्तु तनुश्रुतधरेण नेमिचन्द्रमुनिना भणितं यत् ॥५८॥

सूत्रार्थ—दोष समूह से रहित[1], श्रुत में पूर्ण[2], मुनियों के नाथ[3]-आचार्य इस द्रव्यसंग्रह को संशोधन करें जो थोड़े सूत्र के धारी श्री नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा कहा गया है।

भावार्थ—मुनि (आचार्य) श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के सूत्र श्रुत केवली तुल्य हैं। ऐसे सूत्र रूप द्रव्यसंग्रह के रचयिता मुनि कितने निरभिमानी और गुरुभक्त थे जिन्होंने श्रुतकेवली को अपने सूत्रों के संशोधनार्थ याद किया है। ऐसे श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती को हमारा कोटिशः भक्तिपूर्वक नमस्कार हो।

## प्रश्नोत्तर

(सूत्र ४७ से ५८ तक)

प्रश्न २६४—मोक्षमार्ग की प्राप्ति का क्या उपाय है?

उत्तर—ध्यानाभ्यास।

प्रश्न २६५—ध्यान करने का उपाय क्या है?

उत्तर—नाना प्रकार के ध्यानों को सिद्ध करने के लिये मन को स्थिर करने की आवश्यकता है और मन को वश करने के लिये इष्ट अनिष्ट पदार्थों में राग द्वेष मोह का त्याग करना चाहिये।

प्रश्न २६६—ध्यान के कितने भेद हैं ?

**उत्तर—दो । व्यवहार ध्यान, निश्चय ध्यान ।**

प्रश्न २६७—व्यवहार ध्यान किस का करना चाहिये ?

**उत्तर—पंचपरमेष्ठी रूप पर द्रव्य का । अरहन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, साधु का ।**

प्रश्न २६८—निश्चय ध्यान किसका किया जाता है ?

**उत्तर—अपने शुद्ध आत्म द्रव्य का ।**

प्रश्न २६९—पंचपरमेष्ठी का ध्यान करने योग्य तथा जाप्य करने योग्य ३५ अक्षरों का मन्त्र कौनसा है ?

**उत्तर—णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ।**

प्रश्न २७०—सोलह अक्षरों का मन्त्र कौनसा है ?

**उत्तर—अरहंत सिद्ध आयरिया उवज्झाया साहू ।**

प्रश्न २७१—छह अक्षरों का मन्त्र कौनसा है ?

**उत्तर—अरहन्त सिद्ध या ओं नमः सिद्धेभ्यः**

प्रश्न २७२—पांच अक्षरों का मन्त्र कौनसा है ?

**उत्तर—अ सि आ उ सा**

प्रश्न २७३—चार अक्षरों का मन्त्र कौनसा है ?

**उत्तर—अरहन्त**

प्रश्न २७४—दो अक्षरों का मन्त्र कौनसा है ?

**उत्तर—सिद्ध**

प्रश्न २७५—एक अक्षर का मन्त्र कौनसा है ?

**उत्तर—ओं**

**इन मन्त्रों का निरन्तर ध्यान तथा जाप्य करना चाहिये ।**

प्रश्न २७६—अरहन्त परमेष्ठी का ध्यान कैसे करना चाहिये ?

**उत्तर—नष्ट कर दिये हैं चार घातिया कर्म जिसने, अनन्त चतुष्टय सहित, सप्त धातु रहित परम औदारिक शरीर में स्थित, अठारह दोष रहित, आत्मा अरहन्त परमेष्ठी ध्यान करने योग्य है ।**

प्रश्न २७७—अनन्त चतुष्टय किनको कहते हैं ?

उत्तर—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य को अनन्त चतुष्टय कहते हैं।

प्रश्न २७८—सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान कैसे करना चाहिये ?

उत्तर—नाश कर दिये हैं आठ कर्म और शरीर जिस ने, लोकालोक के जानने वाला, पुरुषाकार, लोक के शिखर में स्थित आत्मा सिद्ध परमेष्ठी ध्यान करने योग्य है।

प्रश्न २७९—आचार्य परमेष्ठी का ध्यान कैसे करना चाहिये ?

उत्तर—जो दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार को स्वयं आचरण करते हैं और दूसरों को आचरण कराते हैं, वे आचार्य परमेष्ठी ध्यान करने योग्य हैं।

प्रश्न २८०—उपाध्यायी परमेष्ठी का ध्यान कैसे करना चाहिये ?

उत्तर—जो रत्नत्रय सहित हैं, निरन्तर धर्मोपदेश देने में लीन हैं, यतियों में श्रेष्ठ हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी ध्यान करने योग्य है।

प्रश्न २८१—साधु परमेष्ठी का ध्यान कैसे करना चाहिये ?

उत्तर—जो मुनि सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान सहित, मोक्ष के मार्गभूत सदा शुद्ध सम्यक्चारित्र को भले प्रकार साधता है वह साधु परमेष्ठी ध्यान करने योग्य है।

प्रश्न २८२—निश्चय ध्यान (मध्यम ध्यान) का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जिस समय साधु एकाग्रता को प्राप्त होकर जो कुछ भी विचार करता हुवा इच्छा रहित प्रवृत्ति वाला होता है उस समय उस मुनि का ध्यान निश्चय ध्यान है (उत्कृष्ट धर्म्यध्यान)।

प्रश्न २८३—परम ध्यान (उत्कृष्ट ध्यान) का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—तुम कुछ भी काय से मत चेष्टा करो, वचन से मत बोलो और मन से मत विचारो जिससे आत्मा आत्मा में ही लवलीन होकर स्थिर हो जाय। यह ही परम ध्यान है (शुक्ल ध्यान)।

प्रश्न २८४—ध्यान की सिद्धि किस के होती है ?

उत्तर—तप-श्रुत-व्रत धारी आत्मा ही ध्यान धुरन्धर होता है। अतः हमें ध्यान की सिद्धि के लिये इन तीनों में निरन्तर लवलीन रहना चाहिये।

※श्रीमद्गुरुदेवाय नमः※

# श्रीपुरुषार्थसिद्ध्युपाय: (मोक्षमार्ग:)

## मोक्षमार्गप्रकाशिका टीका सहित

मङ्गलाचरण

परम पुरुष निज अर्थ को, साध भये गुणवृन्द ।
आनन्दामृतचन्द्रको, वन्दत हूं सुखकन्द ॥१॥

मङ्गलाचरण (देव)

तज्जयति परं ज्योतिः सम समस्तैरनन्तपर्यायैः ।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ॥१॥

अन्वयः—तत् पर ज्योतिः जयति यत्र दर्पणतले इव सकला पदार्थमालिका समस्तैः अनन्तपर्यायैः समं प्रतिफलति ।

सूत्रार्थ—वह उत्कृष्ट ज्योति (प्रकाश-केवलज्ञान) जयवन्त है जिसमें दर्पण के ऊपर के भाग की तरह सम्पूर्ण पदार्थों का समूह अपनी समस्त (भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकाल सम्बन्धी) अनन्त पर्यायों सहित झलकता है ।

भावार्थ—जगत् छह द्रव्यों का समूह है । प्रत्येक द्रव्य में अनन्त गुण है तथा प्रत्येक गुण की अनादि अनन्त समय २ की भिन्न २ पर्याय है । यह सब ज्ञेय है । तथा आत्मा में एक ज्ञान गुण है । केवलज्ञान उसकी स्वभाव पर्याय है । उस पर्याय में अमर्यादित जानने की शक्ति है । द्रव्य गुण पर्याय में प्रमेयत्व स्वभाव होने के कारण तथा पर्याय का स्वभाव भी क्रमवद्ध परिणत होने के कारण, वे अपने स्वरूप को एक समय में युगपत ज्ञान को सौंप देते हैं और ज्ञान में जानने का स्वतः सिद्ध स्वभाव होने के कारण वह उनके स्वरूप को ग्रहण कर लेता है । ऐसा ही वस्तु स्वभाव है । ऐसा आत्मा का स्वभाव जहां पूर्ण प्रकट हो गया

है ऐसे अरहन्त सिद्धों को आचार्य देव ने मङ्गल में स्मरण किया है। साथ ही इसमें पदार्थों के क्रमबद्ध परिणमन स्वभाव का भी निर्णय हो जाता है। आत्मा के सर्वज्ञ स्वभाव का भी निर्णय हो जाता है। आत्मा में प्रमाण और प्रमेय दो गुण हैं तथा अन्य द्रव्यों में केवल प्रमेय गुण है इसका भी निर्णय हो जाता है। आत्मा का स्वभाव अनन्त ज्ञान है, राग द्वेष मोह या सुख दुःख नहीं इसका भी निर्णय हो जाता है। देव सर्वज्ञ ही होता है। तीन लोक और तीन काल का ज्ञाता ही होता है ऐसा भी निर्णय हो जाता है। पदार्थ क्रमबद्ध ही परिणमन करते हैं और ज्ञान उनके त्रिकाल के परिणमन को एक ही समय में जान लेता है ये सब सिद्धान्त मुमुक्षु को उपर्युक्त एक सूत्र से निर्णय कर लेने चाहियें और इसी प्रकार पदार्थ की श्रद्धा करनी चाहिये।

मंगलाचरण (शास्त्र)

परमागमस्य जीवं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम् ॥२॥

अन्वय:—परमागमस्य जीवं[1], निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानं[2], सकलनयविलसितानां विरोधमथनं[3], अनेकान्तं नमामि।

सूत्रार्थ—मैं उस अनेकान्त को (एक पक्ष रहित स्याद्वाद रूप श्रुत ज्ञान को) नमस्कार करता हूं कि जो परमागम का जीवन है[1], तथा जिसने जन्म परम्परा से अन्धे पुरुषों के (अन्य एकान्त मतियों के) हस्ती (हाथी) विधान को (भिन्न २ एकान्त मान्यताओं को) खण्डन कर दिया है[2], तथा जिसने समस्त नयों द्वारा प्रकाशित जो वस्तु का स्वभाव-उनके विरोध को[3], नष्ट कर दिया है।

भावार्थ—इस सूत्र द्वारा आचार्यदेव ने प्रमाणभूत उस अनेकान्तात्मक श्रुतज्ञान* को नमस्कार किया है कि जो ज्ञान केवलज्ञान का

---

* यहां आचार्य श्रीअमृतचन्द्र जी के पेट की बात यह है कि वे इस सूत्र द्वारा श्रीगणधर देव के प्रमाणभूत द्वादशाङ्ग के अनेकान्त श्रुतज्ञान को नमस्कार करना चाहते हैं। गौणतया यह श्रुतज्ञान के स्वरूप का निरूपण तो है ही और निमित्त की अपेक्षा जिनवाणी का निरूपण भी है।

छोटा भाई है उसकी महिमा प्रकट करते हुवे आचार्यदेव ने तीन विशेष दिये है जिसका खुलासा इस प्रकार है:--

(१) इस सूत्र का मर्म ठीक रूप से तो उन जीवों को ख्याल में आयेगा कि जिनको श्रीपंचाध्यायी की दूसरी पुस्तक का ज्ञान होगा। उसमें समझाया है कि जगत् का प्रत्येक सत् अनेकान्त रूप है। अस्ति-नास्ति, तत्-अतत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक, इन चार युगलों से गुंफित है। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि जब पदार्थ ही स्वतः सिद्ध अनेकाँत (अनेक धर्म रूप) है तो उस को जानने वाला वही ज्ञान प्रमाण कोटि में आ सकता है कि जो अनेकान्त को (अनेक धर्मों को) अनेकान्त रूप ही जाने। अतः प्रमाण ज्ञान का अनेकान्तपना तो जीवन है, प्राण है। इसके बिना वह ज्ञान मिथ्या है। एक कौड़ी का भी नहीं है क्योंकि उसने पदार्थ को विपरीत पकड़ा है। एकान्त रूप पकड़ा है।

(२) दूसरा विशेषण 'नास्तिरूप' है। अन्यमतियों के खण्डन करने वाला है। जिस प्रकार जन्म के अन्धे हाथी के एक २ अङ्ग को ही स्पर्श कर उसे सम्पूर्ण हाथी समझते है उसी प्रकार अन्य मत जन्म से (उत्पत्ति से) ही अन्धे है। वे वस्तु अनेकान्त रूप होते हुवे भी एक रूप ही मानते हैं। कोई अस्ति (सामान्य) रूप ही मानता है तो कोई नास्ति (विशेष) रूप ही मानता है। कोई कूटस्थ नित्य मानता है। तो कोई क्षणिक अनित्य मानता है। कोई सदा वही की वही मानता है तो कोई प्रत्येक समय में नई वस्तु का (असत् का) उत्पाद मानता है। कोई सर्वथा एक (अभेद) रूप मानकर द्रव्य गुण पर्याय के भेदों को नाश करता है तो कोई सर्वथा भेद रूप मानकर स्वतः सिद्ध अखण्ड वस्तु को खण्ड २ करता है। ऐसे मूर्खों को इसी आचार्यदेव ने श्रीसमयसार जी में पशु कहा है क्योंकि वे विवेकहीन हैं। अतः आचार्यदेव ने इस सूत्र में उनके एकान्त श्रुतज्ञान को अप्रमाणिक कह कर प्रमाण कोटि से निकाल दिया है।

(३) तीसरा विशेषण 'अस्ति रूप' है। जैनधर्म के अनुसार सच्चे वस्तु स्वरूप का प्रकाशक है। इसमें यह बताया है कि द्रव्य दृष्टि से देखो तो वस्तु 'मात्र सत्-सत्-सत्' रूप ही प्रतीत होगी किन्तु उसी वस्तु को यदि पर्याय दृष्टि से देखो तो कोई जीव रूप है तो कोई पुद्गलरूप है। कोई धर्मरूप है तो कोई अधर्म रूप है। कोई काल रूप है तो कोई आकाश रूप है। इस प्रकार यद्यपि ये दोनों नय सच्चे हैं। अपने २ स्वरूप से वस्तु पर प्रकाश डाल रहे हैं पर फिर भी स्थूल दृष्टि से इनमें परस्पर विरोध दीखता है क्योंकि सत् दृष्टि से सारा जगत् अद्वितीय एक अखण्ड दृष्टिगत होता है किन्तु दूसरी से प्रत्येक पदार्थ भिन्न २ दीखता है। दोनों नय वस्तु के स्वरूप पर बराबर प्रकाश डाल रहे है और पूर्ण-तया सच्चे है। इनके इस स्थूल दृष्टि से दीखने वाले इस विरोध को 'अनेकान्त ज्ञान' मिटा देता है, वह कहता है कि सत् द्रव्य दृष्टि से सत् ही है और पर्याय दृष्टि से प्रत्येक सत् भिन्न २ है। वस्तु सामान्यविशेषा-त्मक है। (B) इसी प्रकार गुण दृष्टि वस्तु को नित्य बताती है किन्तु पर्याय दृष्टि वस्तु को अनित्य बताती है। प्रमाण ज्ञान वस्तु को 'गुण-पर्यायवद् द्रव्यं' ऐसा जानकर उनके विरोध को मिटा देता है। (C) तत् दृष्टि से जो यहाँ मरता है वही स्वर्ग में जन्म लेता है। वह पूर्ण सत्य है किन्तु अतत् दृष्टि से वह मनुष्य था अब देव है यह भी पूर्ण सत्य है— दूसरा ही है। इन प्रकार इनमें विरोध है। अनेकान्त वस्तु को तत्-अतत् स्वभाव वाली बता कर इनके विरोध को मेटता है। (D) एक नय अखण्ड वस्तु की स्थापनाकरके द्रव्य गुण पर्याय के भेद को इनकार करता है किन्तु अनेकनय द्रव्य गुण पर्यायों का भिन्न २ लक्षण बतलाकर वस्तु को भेदरूप ही स्थापित करता है। इस प्रकार इनमें विरोध दीखते हुये भी प्रमाण ज्ञान उसे 'एकानेक' रूप कहकर इस विरोध को मिटा देता है।

इसी प्रकार जो केवल यह मानता है कि उपादान कुछ नहीं करता। केवल निमित्त ही उसे परिणमाता है वह भी एक धर्म को मानने वाला एकान्ती है अथवा जो यह मानता है कि निमित्तकी उपस्थिति ही नहीं होती या

निमित्त की क्या आवश्यकता है वह भी एक धर्म का लोप करने वाला एकान्ती है। जो यह मानता है कि परिणमन तो सब निरपेक्ष अपना २ अपने चतुष्टय में स्वकाल की योग्यता से करते है किन्तु जहाँ आत्मा हीन दशा में या विपरीत दशा में परिणमता है वहाँ योग्य निमित्त का उदय रहना ही है तथा जहाँ आत्मा पूर्ण स्वभाव रूप परिणमता है वहाँ निमित्त क्षय रूप ही है। वह दोनों धर्मों को मानने वाला अनेकान्ती है।

इसी प्रकार जो निश्चय रत्नत्रय से तो अनभिज्ञ है और केवल व्यवहार (राग) से ही मोक्षमार्ग मानता वह केवल व्यवहाराभासी एकान्ती है अथवा जो व्यवहार (राग) को पूर्वचर या सहचर रूप से नहीं मानता वह केवल निश्चयाभासी एकान्ती है। अनेकान्ती कौन है? जो मोक्षमार्ग तो निरपेक्ष शुद्ध रत्नत्रय से ही मानता है किन्तु वस्तु स्वभाव के अनुसार पूर्वचर या सहचर व्यवहार (राग) से भी इनकार नहीं करता। वह व्यवहार भी यथायोग्य साधक में होता ही है। वह अनेकान्ती है।

इसी प्रकार जो यह कहता है कि ज्ञेय के कारण ही ज्ञान होता है या पदार्थों से ही ज्ञान की उत्पत्ति है वह केवल ज्ञेयरूप एक धर्म को मानने वाला एकान्ती है अथवा जो यह मानता है कि ज्ञेय कुछ है ही नहीं। जगत् में एक अद्वितीय ब्रह्म (ज्ञान पदार्थ) ही है। वह भी एक धर्म से इन्कार करने वाला एकान्ती है। अनेकान्ती कौन है? जो यह मानता है कि ज्ञान जानता तो अपने स्वकाल की योग्यता से है पर उचित ज्ञेय भी वस्तु स्वभाव अनुसार निमित्त है ही—वह अनेकान्ती है।

उसी प्रकार जो सांख्यवत् त्रिकाली शुद्ध द्रव्य (निश्चय) को तो त्रिकाल शुद्ध मानता है किन्तु उसके नौ प्रकार के परिणमन को (व्यवहार को) नहीं मानता है वह एक धर्म को मानने वाला एकान्ती है तथा जो बौद्धवत् ६ पदार्थों को ही पूर्ण पदार्थरूप से मानता है किन्तु उनमें अन्वय रूप से पाये जाने वाले आत्म द्रव्य को नहीं मानता वह भी एक

धर्म को मानने वाला एकान्ती है। फिर अनेकान्ती कौन है? जो द्रव्य पर्याय दोनों को स्वीकार करता है। वह अनेकान्ती है।

उसी प्रकार जो मन वचन काय या परवस्तु की क्रिया का कर्त्ता आत्मा को मानता है वह एक पदार्थ की क्रिया का लोप करने वाला अद्वैतवादी एकान्ती है। जो यह मानता है कि स्वतन्त्र रूप से प्रत्येक पदार्थ के भाव को वह द्रव्य स्वयं कर्ता है वह अनेकान्ती है। कहाँ तक कहें वस्तु हर प्रकार से अनेकान्त रूप है।

ऐसा अनेकान्त ज्ञान ही ज्ञानियों की दृष्टि में सम्यग्ज्ञान है। ऐसा वस्तु का निरूपण ही श्रीसर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि में आया है। गणधरदेव ने सुनकर ऐसा ही स्वयं अपने अनुभव से निर्णय किया है। अनादि निधन द्वादशांश में भी ऐसा ही रचित है। ऐसे ही स्वरूप को दिखाने वाला आगम प्रमाण है। ऐसे, ज्ञानियों के अनेकान्तात्मक श्रुत प्रमाण ज्ञान को आचार्य देव ने मङ्गल में याद किया है। इस प्रकार देव शास्त्र का मङ्गलाचरण किया। गुरु तो आचार्य महाराज स्वयं थे ही। अब प्रतिज्ञा करते हैं—

प्रतिज्ञा

लोकत्रयैकनेत्रं निरूप्य परमागमं प्रयत्नेन।
अस्माभिरुपोध्रियते विदुषां पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम् ॥३॥

अन्वय:—लोकत्रयैकनेत्रं परमागम प्रयत्नेन निरूप्य विदुषां अस्माभि: अयं पुरुपार्थसिद्ध्युपाय: उपोध्रियते।

सूत्रार्थ—तीनों लोक को देखने के लिये जो एक अद्वितीय नेत्र है (अर्थात् जिससे सब कुछ ज्ञात हो जाता है–श्री प्रवचनसार गा. २३४) ऐसे परमागम को प्रयत्न से देखकर (वस्तु स्वभाव को भली भाँति निर्णय पूर्वक जानकर विद्वानों के लिए हमारे द्वारा यह पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रन्थ निकाला जाता है (बाहर पाड़ा जाता है)।

भावार्थ—यहाँ पहले तो श्रुतज्ञान की सामर्थ्य बतलाई है कि द्रव्य गुण पर्याय के ज्ञान द्वारा आगम के बल से केवलीवत् यह भी सब कुछ जान लेता है। फिर अपने ज्ञान की प्रमाणता बतलाई कि हमने आगम का भली भाँति अभ्यास करके सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति की है। फिर ग्रन्थ बनाने की प्रतिज्ञा करते हुए ग्रन्थ का परिचय भी दिया। वह इस प्रकार कि-पुरुष त्रिकालीज्ञायक आत्माको कहते हैं। सिद्धि उसकी कैवल्य अवस्था की प्राप्ति को कहते है। उपाय उस केवल ज्ञान की प्राप्ति का कारण जो निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है उसको कहते हैं जो चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होकर बारहवें में पूर्ण हो जाता है अर्थात् आचार्य देव ने इस ग्रन्थ में पुरुष की सिद्धि का उपाय जो मोक्षमार्ग है उस मोक्ष मार्ग के कहने की प्रतिज्ञा की है।

अगली भूमिका—अब यह कहते हैं कि क्योंकि उस मोक्षमार्ग का निरूपण व्यवहार निश्चय दो प्रकार से होता है। अतः जो उपदेशक (मोक्ष मार्ग को बतलाने वाले आचार्य) दोनों रूप से मोक्षमार्ग की वास्तविकता को स्वयं जानते हैं और उसी प्रकार से उसकी प्ररूपणा भी करते हैं वे ही सच्चे वक्ता हैं, वे ही मोक्षमार्ग की ठीक स्थापना कहते हैं तथा ऐसे निरूपण से ही शिष्यों का अज्ञान दूर हो सकता है। एकान्त रूप से मोक्षमार्ग की प्ररूपणा से नहीं यह नास्ति से स्वयं ध्वनित हो जाता है—

### मोक्षमार्ग के प्रवर्तक (नेता) का लक्षण

मुख्योपचारविवरणनिरस्तदुस्तरविनेयदुर्बोधाः।
व्यवहारनिश्चयज्ञाः प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम् ॥४॥

अन्वय—व्यवहारनिश्चयज्ञाः मुख्योपचारविवरणनिरस्तदुस्तर-विनेयदुर्बोधाः (मुनीश्वराः) जगति तीर्थं प्रवर्तयन्ते।

सूत्रार्थ—जो (स्वयं) व्यवहार और निश्चय दोनों के जानकार हैं तथा जिन्होंने (अपनी वाणी में) निश्चय और व्यवहार के निरूपण

द्वारा नष्ट कर दिया है कठिनता से निवारण होने योग्य शिष्यों के अज्ञान को, (ऐसे आचार्य ही) जगत् में (पृथ्वी तल पर) तीर्थ को (मोक्ष मार्ग को—मोक्ष के कारण को--मोक्ष के उपाय को) प्रवर्तित करते है-चलाते हैं-बताते हैं-दिखाते है।

भावार्थ—मुख्य, निश्चय, सत्यार्थ, भूतार्थ, असली, सद्भूत, इनका एक ही अर्थ है। निश्चय रत्नत्रय का द्योतक है जो निरपेक्ष एक ही मोक्ष का मार्ग है। उपचार, व्ययहार, असत्यार्थ, अभूतार्थ, नक़ली, असद्भूत इनका एक ही अर्थ है। जो मोक्षमार्ग रूप से कहा तो जाता है पर है नहीं किन्तु मोक्षमार्ग का पूर्वचर या सहचर है। अतः अविना-भाव सम्बन्ध के कारण उसे भी मोक्षमार्ग रूप से निरूपण करने की आगम तथा लोक की रूढ़ि है। विवरण=निरूपण, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार का है, पर मोक्षमार्ग कहीं स्वयं दो प्रकार का नहीं है। निरस्त=नष्ट कर दिया है। दुस्तर=कठिनता से निवारण होने योग्य। विनेय=शिष्य। दुर्वोध=कुज्ञान, अज्ञान, मिथ्याज्ञान, भ्रमणा, अजानपना-वह इस प्रकार है कि अधिकतर शिष्य तो व्यवहार मोक्षमार्ग को ही सच्चा मोक्षमार्ग समझे वैठे हैं और निश्चय मोक्षमार्ग को जानते ही नहीं हैं। वे अज्ञान से ग्रसित हैं। व्यवहाराभासी हैं। कोई निश्चय को निश्चय रूप से तो जानते ही नहीं है। केवल निश्चय के पक्षपाती हैं और व्यवहार के पूर्वचरपने को या सहचरपने को नहीं मानते है वे भी अज्ञान से ग्रसित हैं। निश्चयाभासी है। और कोई निश्वय व्यवहार दोनों को ही नहीं जानते। मोक्षमार्ग से ही अनभिज्ञ हैं। वे भी अज्ञानी हैं। यह अज्ञान इतना दृढ़ रूप से आत्मा में घर किये बैठा है कि इसका दूर होना कठिन है वह इस प्रकार कि जो व्यवहार का पक्षपाती है उस की यह दृढ़ श्रद्धा है कि यह सचा मोक्षमार्ग है। इस के करते २ निश्चय प्रगट हो जायेगा। वह उसे उपचरित मोक्षमार्ग नहीं किन्तु वास्तविक मोक्षमार्ग माने बैठा है। निश्चय रत्नत्रय की वात ही सुनना नहीं चाहता। फिर उसका अज्ञान कैसे दूर हो। जो निश्चय के पक्षपाती

हैं उन्होंने पहले तो निश्चय वास्तव में किसको कहते है इसको जाना ही नहीं है पर पक्ष निश्चय का इतना है कि व्यवहार की पूर्वचरता या सहचरता भी उन्हें नहीं भाती। अपने को पक्के मोक्षके ठेकेदार समझे बैठे हैं। भला इनका अज्ञान कैसे दूर हो। बड़ा कठिन है। तीसरे वो लोग हैं जो व्यसनों में, विषय कषायों में इतने फंसे हुये हैं कि मुख्य और उपचार दोनों से अजान हैं। उनका अज्ञान तो दूर होना बड़ा ही कठिन है। फिर भी गुरु महाराज इतने योग्य होते हैं कि उपर्युक्त सब शिष्यों के कठिनता से निवारण होने योग्य अज्ञान को भी अपनी दिव्य अनेकान्त (मुख्य और उपचार निरूपण से ओत प्रोत) वाणी द्वारा उनके अज्ञान अन्धकार को दूर कर सम्यग्ज्ञान का प्रकाश कर ही देते हैं।

अब कहते हैं कि ऐसा कौन कर सकते हैं तो कहते हैं कि वही ऐसा कर सकते है जो स्वयं मुख्य (निश्चय) और व्यवहार (उपचार) दोनों के जानकार हैं। भूले हुवे को मार्ग कौन दिखा सकता है जो स्वयं उसका जानकार हो। जो स्वयं अंधा है वह दूसरों को क्या दिखलायेगा। अथवा जिसकी एकान्त बुद्धि है। केवल निश्चय का ही पक्षपाती है। व्यवहार के अस्तित्व से ही इनकार करता है या निश्चय मोक्षमार्ग को तो जानता ही नहीं केवल व्यवहार मार्ग से ही मोक्ष कहता है ऐसा एकान्तरूप जिसका ज्ञान है वह तो स्वयं अजान है वह क्या दिखलायेगा– जो स्वयं जानता है कि मार्ग तो निश्चय रूप ही है। व्यवहार तो पूर्वचर या सहचर है वह ही आचार्य जगत में धर्म तीर्थ की प्रवर्तना करते हैं। तीर्थ, मोक्षमार्ग, मोक्ष का कारण, मोक्ष का उपाय, मोक्ष का साधन सब पर्यायवाची हैं। चौथे से बारहवें गुणस्थान की दशा के द्योतक हैं। तीर्थफल, मोक्ष, साध्य, सब पर्यायवाची हैं। तेरहवें गुणस्थान की दशा के वाचक हैं।

निश्चय व्यवहार का लक्षण (स्वरूप) तथा निश्चय की अनभिज्ञता

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ॥५॥

अन्वय:—इह (मोक्षमार्गे) (मुनीश्वरा:) निश्चयं भूतार्थं (वर्णयन्ति तथा) व्यवहारं अभूतार्थं वर्णयन्ति। प्राय: सर्व: अपि संसार: भूतार्थबोध-विमुख: (अस्ति)।

सूत्रार्थ—यहां (धर्मतीर्थ में–मोक्षमार्ग में) (आचार्य) निश्चय मोक्षमार्ग को भूतार्थ मोक्षमार्ग (सच्चा मोक्षमार्ग–संवर निर्जरा रूप कार्य करने वाला मोक्षमार्ग) वर्णन करते हैं और व्यवहार मोक्षमार्ग को अभूतार्थ मोक्षमार्ग (झूठा मोक्षमार्ग–आस्रव बंध करने वाला) वर्णन करते हैं। भूतार्थ म क्षमार्ग के ज्ञान से रहित प्राय: (किसी२ ज्ञानी को छोड़कर) सब ही संसार है। (और संसार जो अभूतार्थ मोक्षमार्ग है उसी को भूतार्थ मोक्षमार्ग समझता है)।

भावार्थ—पहले तो आचार्यदेव ने दोनों मोक्षमार्गों का लक्षण कहा है कि जो वास्तव में मोक्षमार्ग है। सच्चा मोक्षमार्ग है। जिससे संवर निर्जरा रूप कार्य होता है वह तो निश्चय है और जो मोक्षमार्ग तो नहीं है किन्तु मोक्षमार्ग रूप से कहा जाता है। जो संवर निर्जरा तत्त्व रूप नहीं है किन्तु आस्रव बंध के करने वाला है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। इस प्रकार दोनों के लक्षण का बराबर निर्णय होना चाहिये। इस सूत्र की प्रथम पंक्ति वही है जो श्रीसमयसार जी गा० ११ की प्रथम पंक्ति है किन्तु प्रकरण वश अर्थ में इतना अन्तर है कि वहाँ आत्मा के ९ परि-णामों को व्यवहार और उनमें अन्वय रूप से पाये जाने वाले सामान्य को भूतार्थ-निश्चय कहा है। और यहाँ प्रकरण मोक्षमार्ग का है यहाँ यह अर्थ है कि शुद्ध सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की पर्यायें भूतार्थ मोक्षमार्ग है और श्रद्धा ज्ञान चारित्र के विकल्प अभूतार्थ मोक्षमार्ग है। इतना दोनों जगह प्रकरणवश फेर है सो मुमुक्षु को ध्यान रखना चाहिये। मुमुक्षु को भूल न हो जाय अत: यहाँ लिख दिया है। नीचे की पंक्ति में वहाँ तो यह अर्थ है कि ९ तत्त्वों के आश्रय वाला मिथ्यादृष्टि है और सामान्य के आश्रयवाला सम्यग्दृष्टि है और यहाँ यह अर्थ है कि जो

उपचार मोक्षमार्ग है। वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है उससे तो सारा जगत् परिचित है। यहाँ तक कि उसी को अर्थात् मन वचन काय रूप परद्रव्य की क्रियाको तथा शुभ विकल्पों को ही मोक्षमार्ग समझे बैठा है और उसका दृढ़ विश्वास है कि इनके करते करते एक दिन निश्चय प्रकट हो जायेगा और जो कारण-समयसार (ज्ञायक) के आश्रय से कार्यसमयसार प्रकट होता है। (शुद्ध सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की पर्याय जो नवीन प्रकट होती है) वह वास्तव में मोक्षमार्ग है। उस से ही संवर निर्जरा रूप कार्य होता है। उसके ज्ञान से अपरिचित हैं। अजान है। विमुख है। भूला हुवा है और कोई २ तो उस का विरोधी भी है। मोक्षमार्ग के विषय में ऐसी जगत् की परिस्थिति है। इसलिये ही आचार्य देव ने कुछ खेद मिश्रित से शब्द लिखे हैं कि भाई वास्तविक मोक्षमार्ग से सब जगत् विमुख है।

पं० टोडरमल जी ने कहा है:—

केऊ नर निहचै करि आत्मको शुद्धि मान भये हैं स्वच्छंद न पिछाने निज शुद्धता
केऊ व्यवहार दान शीलतप भाव ही को आतमको हित जान छाँड़त न मुद्धता॥
केऊ व्यवहार नय निहचै के मारग के भिन्न २ जान यह बात करे उद्धता।
जबै जानै निहचै के भेद व्यवहार सब कारन को उपचार माने तब बुद्धता॥

देखिये पंडित जी ने उपर्युक्त काव्य में स्पष्ट लिखा है कि जब व्यवहार को "उपचार" कारण माने तब ज्ञानी है इस हिन्दी पद्य में ठीक वही भाव है जो मूल सूत्र नं० ४ तथा नं० ५ में है। आप ध्यान से विचारिये ऐसी प्रार्थना है।

व्यवहार का प्रयोजन तथा शिष्य की अपात्रता

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥६॥

अन्वयः—मुनीश्वराः अबुधस्य बोधनार्थं अभूतार्थं देशयन्ति। यः केवलं व्यवहार एव अवैति तस्य देशना नास्ति।

सूत्रार्थ—आचार्य अज्ञानी को ज्ञान कराने के लिये अभूतार्थ को (व्यवहार को) कहते हैं (किन्तु) जो केवल व्यवहार को ही जानता है, उस शिष्य के लिये उपदेश ही नहीं है।

भावार्थ—व्यवहार का प्रयोजन तो केवल निश्चय का ज्ञान कराना है न कि व्यवहार को ही निश्चय समझना। जैसे चौथे गुण-स्थान में जितने अंश में निश्चय रत्नत्रय प्रकट हुआ है। वह अंश तो शब्द और विकल्प के अगोचर है फिर उसका कैसे ज्ञान करायें तो उस का यही तरीका है कि उसका अविनाभावी सहचर जो वहाँ शुभ विकल्प रूप प्रवृत्ति है उसके द्वारा उस शुद्ध अंश के अस्तित्त्व का ज्ञान कराते हैं जैसेकि वहाँ देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान है। तत्त्वों का श्रद्धान है। प्रशम संवेग अनुकम्पा है। आठ अंग हैं। उसी प्रकार पांचवें के शुद्ध अंश का ज्ञान उसके सहचर अणुव्रत रूप या प्रतिमा रूप शुभ प्रवृत्ति से कराते हैं। उसी प्रकार छठे के शुद्ध अंश का ज्ञान १३ प्रकार की व्यवहार चारित्र रूप प्रवृत्ति से कराते हैं। इस प्रकार अज्ञानी को निश्चय रूप जो शुद्ध मोक्षमार्ग है उसका व्यवहार द्वारा ज्ञान कराते हैं। यह व्यवहार का प्रयोजन है। वह निश्चय का पूर्वचर या सहचर होनेके कारण शुद्ध अंशको पकड़ा देता है। व्यवहार प्रतिपादक है। निश्चय प्रतिपाद्य है। बस इतना ही व्यवहार का प्रयोजन है। इससे अधिक और कुछ नहीं। अब नीचे की पंक्ति का अर्थ समझाते हैं कि जो निश्चय को तो बिल्कुल जानता ही नहीं है। और जो व्यवहार प्ररूपणा है उसे ही सच्चे मोक्षमार्गवत् समझता है। उसे ही वास्तविक रत्नत्रय समझता है। तो आचार्य देव कहते हैं कि ऐसे मूढ़ों के लिये जिनवाणी का उपदेश ही नहीं है। जिनवाणी का उद्देश्य तो निश्चय को पकड़ाने का था और वह असली मुद्दा उसने छोड़ दिया और जो अभूतार्थ वस्तु थी उसे ही भूतार्थ समझ कर पकड़ लिया तो कहते हैं कि उसके लिये हमारा उपदेश ही नहीं है। यहाँ शिष्य की अपात्रता का निरूपण किया है। व्यवहाराभासी की बात है।

इसी आशय की गाथा श्री समयसार जी में न. ८, ९, १० आई हैं पर प्रकरणवश इतना अन्तर है कि वहाँ तो वस्तु का ज्ञान कराने के लिये जो उसके चतुष्टय में उपचरित असद्भूत (बुद्धिपूर्वक राग) अनुपचरित असद्भूत (अबुद्धिपूर्वक राग) उपचरित सद्भूत (स्वभाव पर्याय भेद) तथा अनुपचरित सद्भूत (गुण भेद) ये चार भेद किये हैं वे केवल म्लेच्छ के वस्तु के (अजान) को आर्य–वस्तु का (ज्ञाता) बनाने के लिये किये हैं। वस्तु के प्रतिपादन करने के लिये हैं किन्तु प्रतिपाद्य जो निश्चय सामान्य द्रव्य है उसमें ये चारों भेद नहीं हैं। वहाँ वस्तु परिज्ञान का प्रकरण है और यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग का प्रकरण है। यहाँ निर्विकल्प मार्ग को निश्चय और विकल्प मार्ग को व्यवहार कह रहे हैं। हाँ एक नियम दोनों जगह बराबर है और वहाँ भी व्यवहार प्रतिपादक हैं निश्चय प्रतिपाद्य है और यहाँ भी व्यवहार प्रतिपादक है निश्चय प्रतिपाद्य है। वहाँ भी व्यवहार का प्रयोग निश्चय को पकड़ाने के लिये किया गया है और यहाँ भी व्यवहार का प्रयोग निश्चय को पकड़ाने के लिये किया गया है। प्रकरण का बराबर ध्यान रखना चाहिये। श्री समयसार जी का उद्देश्य ९ तत्त्वों में पाये जाने वाले सामान्य आत्मा को पकड़ाने का है क्योंकि उसके आश्रय से सम्यक्त्व अथवा रत्नत्रय की उत्पत्ति होती है और यहाँ यह बताना चाहते हैं कि उस सामान्य के आश्रय से प्रकट होने वाली जो वास्तविक पर्यायें हैं वह तो निश्चय (भूतार्थ) मोक्षमार्ग है और उनके पूर्वचर या सहचर जो विकल्प (राग) वर्तता है वह व्यवहार (अभूतार्थ) मोक्षमार्ग है। दोनों जगह प्रकरणवश इतना अन्तर है जो मुमुक्षु को बराबर अनुसरण करना चाहिये। करुणावश लिख दिया है ताकि मुमुक्षु को भूल न हो जाय।

### व्यवहार में भूल

माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥७॥

अन्वय:—यथा अनवगीतसिंहस्य माणवक: एव सिंह: भवति तथा अनिश्चयज्ञस्य व्यवहार: एव ही निश्चयतां याति ।

सूत्रार्थ—जैसे सिंह को नहीं जानने वालेके बिल्ली ही सिंहपने को प्राप्त होती है, उसी प्रकार निश्चय को नहीं जानने वाले के व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ—जो सिंह को नहीं जानता था और जंगल में उसे जाना था ऐसे व्यक्ति को सिंह का ज्ञान कराने के लिये बिल्ली दिखलाई जाती है किन्तु जो कोई इस आशय को न समझकर उस बिल्ली को ही सिंह मान ले तो वह असली सिंह को तो न पा सकेगा और बिल्ली ही सिंहपने को प्राप्त हो जायेगी । ठीक इसी प्रकार व्यवहार तो बिल्लीवत् निश्चय के दिखाने वाला–पकड़ाने वाला—बताने वाला था न कि स्वयं निश्चयरूप था । उसी को निश्चय रूप समझने वाले के व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त हो जाता है ।

यह सूत्र नियमरूप है । सर्वत्र व्यवहार निश्चय पर लागू होगा । यहां तो इस प्रकार लागू होगा कि जो व्यवहार मोक्षमार्ग है वह ही अज्ञानी को निश्चय मोक्षमार्ग पने को प्राप्त हो जाता है अर्थात् वह व्यवहार मोक्षमार्ग को ही वास्तविक मोक्षमार्ग मानता है और वास्तविक मोक्षमार्ग से अनभिज्ञ रहता है और श्रीसमयसार जी में जो भूतार्थवस्तु को पकड़ाने के लिये ४ भेद रूप अभूतार्थ वस्तु का निरूपण किया जाता है । अज्ञानियों को वह अभूतार्थ वस्तु ही भूतार्थपने को प्राप्त हो जाती है और भूतार्थ वस्तु (सामान्य) से अनभिज्ञ रह जाता है । जहां जहां भी आगम में व्यवहार निश्चय का निरूपण आता है अज्ञानी को वह व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त हो जाता है जैसे श्रीमोक्षशास्त्र में "गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकार:" आया है । वहाँ केवल इतना ही आशय है कि जीव और पुद्गलों के स्वतः होने वाले गमन में धर्म और अधर्म निमित्तमात्र कारण हैं किन्तु अज्ञानी उन्हें निश्चय कारण मानकर वे ही जीव को चलाते ठहराते हैं ऐसा मान लेता है । इसी प्रकार "सुख दुःख जीना मरना पुद्गलों का उपकार है" या "जीवों का परस्पर उपकार है" ये सब निमित्त मात्र का कथन है किन्तु अज्ञानी को ये वास्तविकता को प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार श्रीप्रवचनसार जी में आया है कि ज्ञेय अपना

स्वरूप ज्ञान को सौंप देते है। ज्ञान उन्हें पकड़ लेता है यह सब उपचार कथन है। पर यह उपचार ही अज्ञानियों को भूतार्थपने को प्राप्त हो जाता है। आत्मा का मोक्षमार्ग में जो शरीर वचन और परद्रव्य (शुद्ध भोजन आदि) की क्रियायें करने का कथन आता है वह सब उपचार है किन्तु वह सब कथन अज्ञानियों को निश्चयपने को प्राप्त हो जाता है। कर्मों के उदय से जीव में यह भाव हुवे। जीव ने कर्मो को बनाया। यह सब उपचार कथन है। इस का आशय यह है कि जब जीव स्वयं अपनी योग्यता से राग करता है तो उदय निमित्तमात्र है या जब कर्म वर्गणायें स्वयं अपनी योग्यता से कर्मरूप में परिणमती है तो जीव के राग की उपस्थिति निमित्तमात्र है। जीव कर्म फल को भोगता है। जीव ने कर्म बांधे। आकाश नें छह द्रव्यों को जगह दी। पुद्गलों ने पुद्गलों को बाँध लिया। सब उपचार कथन है। अज्ञानी को सब भूतार्थपने को प्राप्त हो जाता है। सावधान रहिये आप से यह भूल न हो जाये। जय हो उस सद्गुरुदेव की जिसने आगम का ऐसा अलौकिक रहस्य समझाया है। आचार्य देव का यह करणसूत्र है। सर्वत्र लागू होगा। श्रीसमयसार जी गाथा नं० १५६ में कहा है—

विद्वद्जनों भूतार्थ तज व्यवहार में वर्तन करें।
पर कर्म क्षय का विधान तो परमार्थ आश्रित सन्त के ॥१५६॥
व्यवहार और निमित्त के कथनों में लुटता जगत है।
रे ज्ञानी! इससे चेत होकर जान तू भूतार्थ से ॥

## उपसंहार

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः ॥८॥

अन्वयः—यः व्यवहारनिश्चयौ तत्त्वेन प्रबुध्य मध्यस्थः भवति सः एव शिष्यः देशनायाः अविकलं फलं प्राप्नोति।

सूत्रार्थ—जो व्यवहार निश्चय दोनों को तत्त्वरूप से (वास्तविक रूप से-निश्चय सच्चा मोक्षमार्ग है और व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं है किन्तु आरोपित कथन है-ऐसा बराबर) जानकर मध्यस्थ होता है (किसी एक का पक्षपात नहीं करता अर्थात् केवल किसी एक को ही सत्ता मानकर स्वच्छन्द नहीं होता है किन्तु उनके स्वरूप अनुसार यथा योग्य

दोनों की सत्ता को मानता है), वह ही शिष्य उपदेश के सम्पूर्ण फल को पाता है (अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग का आश्रय करके संवर निर्जरा करता है और व्यवहार को सहचर या पूर्वचर तथा अभूतार्थ मानकर उसका ज्ञाता दृष्टा बन जाता है और अपने इष्ट की (मोक्ष की) सिद्धि कर लेता है) [दूसरा नहीं अर्थात् व्यवहार को ही निश्चयवत् मानने वाला नहीं या व्यवहार की सहचरता रहित अकेले निश्चय को मानने वाला इष्ट की सिद्धि नहीं कर पाता] ।

भावार्थ—इसका यह कदापि अर्थ नहीं है कि व्यवहार निश्चय दोनों को बराबर उपादेय मानकर दोनों को अंगीकार करे । ऐसा मानने वाला तो मिथ्यादृष्टि है । एक को उपादेय माने दूसरे को सहचर या पूर्वचर भी अवश्य माने वह ही शिष्य सच्चा श्रद्धानी होकर मोक्षमार्ग का अधिकारी होता है । बस इतना ही यहाँ आशय है ।

गौणतया यह सूत्र अन्य व्यवहार निश्चय के सिद्धान्तों पर भी बराबर लागू होगा जैसे जो कार्य तो निश्चय कारण रूप उपादान से ही मानता है और व्यवहार रूप उपचार कारण निमित्त को भी मानता है वह ही शिष्य उपदेश के सार फल को पाता है । जो त्रिकाली सामान्य ज्ञायक है उसी को निश्चय वस्तु मानता है और उसमें पूर्वोक्त ४ व्यवहार नयों का निरूपण व्यवहार मानता है वह ही उपदेश के सार को पाता है । जो जीव और पुद्गल के ठहरना, चलना, अवगाह लेना और परिणमना कार्य तो स्वतन्त्र उपादान के गुणों की पर्यायों की योग्यता से मानता है और धर्म अधर्म आकाश काल को उपचरित कारण मानता है वह ही उपदेश के सार को पाता है । उसी प्रकार ज्ञान जानता तो स्वकाल की योग्यता से है । ज्ञेय तो उपचार-व्यवहार-निमित्त मात्र कारण है ऐसा जो जानता है वह ही उपदेश के सार को पाता है, जो राग का कर्तृत्व तो आत्मा के निश्चय से मानता है किन्तु कर्मोदय को उपचरित कारण मानता है वह ही उपदेश के सार को पाता है । कर्म बनते तो अपनी योग्यता से हैं । जीव का राग तो निमित्तमात्र है ऐसा जो मानता है वह ही उपदेश के सार को पाता है । इस प्रकार जो दोनों को मानकर मध्यस्थ होता है । एक को मानकर दूसरे को नहीं उड़ाता वह ही शिष्य बोध को प्राप्त होता है अन्यथा एक का आभासी होकर संसार में ही भटकता है । यही इस सूत्र का सार है ।

प्रथम भूमिका समाप्त